NEHRU
BAL PUSTAKALAYA

बहुत दिन हुए...

(भाग 2)

मीठी चोक्सी और पी. एम. जोशी

अनुवाद : शुभा वर्मा

चित्रांकन : पुलक विश्वास



नेहरू बाल पुस्तकालय

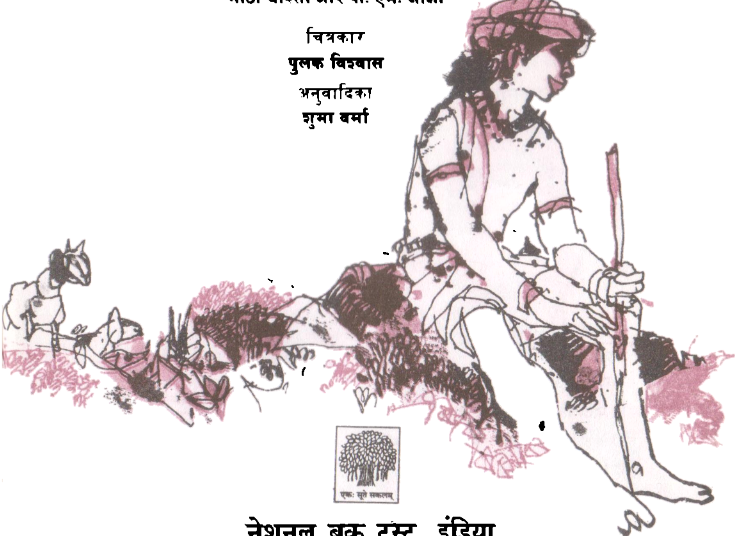
बहुत दिन हुए . . .

(भाग 2)

मीठी बोम्सी और पी. एम. जोशी

चित्रकार
पुलक विश्वास

अनुवादिका
शुभा वर्मा



नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 978-81-237-3399-9

पहला संस्करण : 1973

दसवीं आवृत्ति : 2011 *(शक 1932)*

Once Upon a Time—Part-II *(Hindi)*

₹ 19.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-II
वसंत कुंज, नई दिल्ली-110 070 द्वारा प्रकाशित

जीमुत और भिक्षु

लगभग दो हज़ार वर्ष पहले पश्चिमी घाट के पर्वतों के नीचे फैले क्षेत्र में, जो अब कारला कहलाता है, वेलुरका नाम का एक गाँव था। कारला की गुफाओं में जाने का रास्ता यहीं से शुरू होता था।

दक्षिण के जंगल तब बहुत घने थे। जंगली जानवर लोगों के घरों के आस-पास चक्कर काटा करते थे। जंगल के गाँव महान शतवाहन वंश के शासन में खूब फले-फूले थे। इस वंश के राजाओं ने अपने राज्य में शांति और व्यवस्था बनाये रखी थी।

उत्तर भारत के मैदानों की तरह इस ऊबड़-खाबड़ क्षेत्र में बड़ी सड़कें नहीं थीं। पहाड़ियाँ सीढ़ियों की तरह एक के ऊपर एक उठती चली जाती थीं और फिर गहरी उतराई आ जाती थी। ऊपर-नीचे कुछ रास्ते थे जिन पर जानवर खेत-खलिहानों मे बोझ ढो-ढोकर ले जाया करते थे।

जीमुत अनाथ था। अपने चाचा-चाची के साथ गाँव में एक सिरे पर बनी



झोंपड़ी में रहता था। खेती मे कुछ खास आमदनी नहीं होती थी। परिवार का सहारा कुछ बकरियाँ थीं जिनकी देखरेख जीमुत करता था। चाची का स्वभाव बड़ा चिड़चिड़ा था। वह कभी-कभी जीमुत के साथ बड़ी सख्ती से पेश आती। चाचा का स्वभाव भी कम झगड़ालू नहीं था। इसीलिए नीचे के चरागाहों में उसे कोई जगह नहीं मिली थी। जीमुत रोज सुबह तड़के ही काली बाजरे की रोटी का एक टुकड़ा लेकर ऊपर पहाड़ियों पर बकरी चराने चल पड़ता और सूरज डूबते घर वापस आता।

पहाड़ पर चढ़ते-चढ़ते लगभग आधी दूरी पर जीमुत रोज रुक जाता। एक बड़ी-सी चट्टान पर वहाँ एक गुफा थी। पिछले तीन सौ सालों से इस गुफा में बौद्ध भिक्षुओं का एक मठ था। जीमुत, मुख्य गुफा की ओर जाते हुए, मठ के सुंदर स्तम्भों को देखा करता। मुख्य द्वार के तेहरे तोरण उसे बहुत अच्छे लगते। इधर-उधर चलती-फिरती या बैठी हुई गेरुआ वस्त्रों में लिपटी उसे कई आकृतियाँ दिखायी पड़तीं। इनके सिर के बाल मुड़े हुए होते। कोई फुसफुसा कर मंत्र पढ़ रहा होता, कोई ध्यान लगाये बैठा होता। कभी-कभी जीमुत सुन लेता कि वे फुसफुसा कर कह रहे हैं, 'बुद्ध, धर्म, संघ, शरणं गच्छामि।'

उन्हीं उपासकों में से एक कभी-कभी जीमुत के सिर पर हाथ रखकर उसे आशीर्वाद देता। जीमुत वहाँ जो कुछ देखता उसके विषय में जानने की उसकी बड़ी इच्छा होती—अँधेरा, विशाल कक्ष, ऊँचे स्तम्भ, उन पर खुदी हुई स्त्री-पुरुषों की आकृतियाँ, जानवर और बेल-बूटे, अर्द्ध गोलाकार स्तूप की गहराई। वृद्ध भिक्षु मधुसूदन जब रुक कर उसके सिर पर हाथ रखते तो जीमुत अपना सारा साहस बटोर कर उनसे कुछ पूछना चाहता, लेकिन प्रश्न होंठों पर आये, इससे पहले ही मधुसूदन चले जाते।

यह समय सम्राट अशोक के शासनकाल से चार सौ साल पहले का था। अशोक के प्रयत्नों से बौद्ध धर्म का प्रचार उनके पूरे साम्राज्य में हो चुका था। मित्र देना भी बौद्ध धर्म स्वीकार कर चुके थे। चारों ओर बौद्ध धर्म विकसित हो रहा था।

दूसरी शताब्दी ई० पू० से ही बौद्ध भिक्षु पूजा और रहने के लिए एकांत जगहों की



तालाब में रहते थे। एकाकी पहाड़ों या पहाड़ी दर्रों में ऐसे स्थान उन्हें मिल जाते थे। मठ के बीच में पूजा के लिए एक विशाल कक्ष होता था। इसे 'चैत्य' कहते थे। इसी 'चैत्य' में बुद्ध का स्मारक-स्तूप बना होता था। दक्षिण के अनेक बौद्ध मठों में से कारला का यह मठ सबसे सुंदर और सम्पन्न था।

पहाड़ी क्षेत्र की इन बस्तियों में मंदिर होते थे जहां लोग पूजा करने आते। भिक्षुओं के रहने के लिए विहार होते थे और साथ ही विद्यालय भी होता था जहां बौद्ध धर्म की शिक्षा दी जाती थी। हर वयस्क भिक्षु या 'थेर' युवा भिक्षुओं का गुरु होता था। उनके अध्ययन पर निगरानी रखता था। वरिष्ठ भिक्षु धार्मिक और दार्शनिक प्रवचन देते थे जिसमें मठ निवासियों के अलावा बाहर के लोग, तीर्थयात्री और व्यापारी आदि भी शामिल होते थे।

ये विहार नीचे की बस्तियों और गांवों से संपर्क रखते थे।

धार्मिक लोग पूजा करने यहाँ आते रहते थे। त्यौहार के दिन छोटे-छोटे दीपों की कतारों से पूरा विहार जगमगा उठता था। भेंट-सौगात लेकर आनेवालों का तो उस दिन ताँता बँध जाता था।

जीमुत बड़ा अकेला था। अपने झगड़ालू स्वभाव के कारण उसके चाचा-चाची का मेलजोल किसी से नहीं रह पाता था और सुबह से शाम तक उसे बकरियाँ भी देखनी पड़ती थीं। इस कारण पहाड़ और चट्टानें ही उसकी साथी थीं। गाँव के दूसरे लड़कों की अपेक्षा वह उनके बीच ज्यादा हिम्मत से घूमना-फिरना था।

एक शाम जीमुत का चाचा अपनी झोंपड़ी के सामने गाँववालों से बातचीत कर रहा था। जीमुत पूछ बैठा, "ताता, पहाड़ के उस ओर पत्थर के मकानों में रहने-वाले वे पुजारी लोग कौन हैं जो हमेशा पीले कपड़े पहने रहते हैं?"

"वे भिखारी हैं," चाचा ने रूखेपन से जवाब दिया, "दिन-भर कोई काम नहीं करते और खाने के लिए भीख माँगने चले आते हैं।"

"भिक्षु भिखारी नहीं होते," एक बुजुर्ग बोले, "वे गरीबों में रहते हैं, खाना माँगते नहीं। यह ठीक है कि रोज एक युवा भिक्षु अपना पात्र लेकर गाँव में फेरी लगाने आता है, लेकिन वह कुछ माँगता नहीं। श्रद्धालु लोग अपने भोजन में से थोड़ा-सा अंश भिक्षु के भिक्षा-पात्र में खुशी-खुशी डाल देते हैं।"

"उनके गोदाम में तेल और अनाज भरा रहता है," काल्हा बोला।

"हाँ," बुजुर्ग ने कहा, "राजा और अमीरों ने विहार के नाम गाँव लिख दिये हैं। उनके करों से अनाज खरीदा जाता है। दानियों ने खंभे, मेहराबें, जलकुंड आदि बनवा दिये हैं। गरीब-अमीर सब भिक्षुओं को भेंट देते हैं क्योंकि वे बुद्धिमान और पूजनीय होते हैं।"

"वे बीमारों की देखरेख करते हैं और अपने बगीचे से जड़ी-बूटी लाकर उनका उपचार करते हैं," दूसरे ने कहा।

"एक बार मेरी गाय भटक गयी थी तब भिक्षुओं ने मेरी मदद की थी," तीसरे ने कहा।

"और अभी कुछ साल पहले जब फसल बिल्कुल नष्ट हो गयी थी," एक और

व्यक्ति बोला, "भिक्षुओं ने अपने गोदाम में अनाज देकर कितने ही परिवारों की सहायता की थी।"

"यह तो एक बार की बात है। वैसे इनके गोदामों में किसका भला होता है?" काल्हा का स्वर अब भी कटु था।

"भिक्षुओं के खुद के काम आता है, मेहमानों के काम आता है, राहगीर, यात्री विद्यार्थी जो भी यहाँ विहार देखने या शिक्षा पाने के लिए आते हैं, उनका खाना-पीना इन्हीं गोदामों में तो होता है। भिक्षु कल्याण का काम करते हैं, इसलिए लोग उनकी जरूरतों का ध्यान रखते हैं और फिर उनकी जरूरतें हैं ही कितनी?"

"जिन लोगों के चित्र दीवारों पर खुदे हैं उन्होंने कितने कीमती कपड़े पहन रखे हैं।"

"चैत्य गुफा बड़ी सुंदर है--ऊँचे-ऊँचे खंभों में घिरा इतना बड़ा स्तूप! होना भी चाहिए--पवित्र स्थान जो ठहरा! इसमें भगवान बुद्ध का एक बाल रखा हुआ है।"



"अच्छे-अच्छे कपड़ों मे जो आकृतियाँ खुदी हैं, जिनके बाल संवार कर काटे गये हैं, वे सब दान देनेवाले या उनके माता-पिता हैं। स्वयं भिक्षु लोग बेहद सादगी-पसंद हैं। घुटे हुए बाल, गेरुए रंग का लम्बा वस्त्र, बस। जिन कमरों में वे रहते है वे भी उन्हीं की तरह सादे है। पहाड़ के किनारे एक कतार में जो गुफाएँ बनी हैं उन्ही में वे सोते हैं। ये गुफाएँ एक के लिए भी है, दो के लिए भी। दो वाली गुफाओं में शिष्य के साथ गुरु भी सोते हैं। नये भिक्षुओं और मेहमानों के लिए कुछ छोटे शयन-कक्ष भी हैं। सोने के लिए एक चबूतरा बना है और सिर टिकाने के लिए जरा-सी ऊँची जगह बना दी गयी है।"

जीमुत दिलचस्पी से सुनता रहा। तभी उसकी चाची अपने कर्कश स्वर में चीख पड़ीं, "वहाँ क्या कर रहा है ? निकम्मा कहीं का। दिन-भर खेलता रहता है और अब बड़ों के बीच में बैठ कर उनकी बातें सुन रहा है। कल फिर देर से उठेगा . . ."

जीमुत जैसे ही अपनी चाची के पास गया, चाची ने उसे एक चाँटा रसीद कर दिया।

दिन-पर-दिन गुजरते गये। जीमुत अपनी बकरियाँ लेकर पहाड़ की चोटी पर जाता। बौद्ध मठ के पास से गुजरता तो उसका मन होता किसी से बातें करे, कुछ सीखे। लेकिन ऐसा मौका उसे कभी नहीं मिला। अंत में भाग्य ने साथ दिया।

एक दिन उसका चाचा बीमार पड़ गया। उसकी देख-रेख में लगे रहने के कारण बकरियों को लेकर जाने में कुछ देर हो गयी। जैसे ही वह झोंपड़ी से बाहर निकला उसने देखा एक लंबा जवान भिक्षु अपना भिक्षा-पात्र लिए सामने से जा रहा है। वह कुछ माँग नहीं रहा था, लेकिन जो लोग उसके भिक्षा पात्र मे कुछ डाल देते उनको धन्यवाद देता जा रहा था।

वह भिक्षु आनंद थे। त्रिरश्मि (नासिक) के मठ मे अपनी शिक्षा पूरी करने यहाँ कारला मठ में अभी हाल ही में आये थे।

भिक्षा-पात्र लिए वह शांतिपूर्वक घूम रहे थे। गाँववालों के पास जो कुछ था उसका एक हिस्सा वे उस पात्र में डाल रहे थे। कुछ गृहणियों ने मुट्ठी-भर चावल



दिये. कुछ पत्ते मे लपट कर थोड़ा दही डाल गयीं। जीमुत के पास दिन-भर की खुराक काले बाजरे की रोटी थी। उसकी बड़ी इच्छा थी कि वह भी कुछ दे। अपनी रोटी का आधा हिस्सा उसने पात्र में डाल दिया। भिक्षु ने मुस्करा कर उसे धन्यवाद दिया।

जीमुत ने फैसला किया कि वह रोज अपना भोजन भिक्षुओं के साथ बाँट कर खायेगा। उसने भिक्षु आनंद से कहा, "भिक्षा-पात्र में अपना हिस्सा मैं रोज डालना चाहता हूँ। लेकिन तड़के ही मुझे घर छोड़ देना पड़ता है. अगर खंभे के पास एक पात्र रख दिया जाय तो जाते समय अपने भोजन का एक हिस्सा उसमे डालता जाऊँगा।"

भिक्षु आनंद जीमुत से कुछ लेना नहीं चाहते थे, लेकिन उसे दुखी करना भी ठीक नहीं था। इसलिए उन्होंने जीमुत से कहा कि वह भिक्षु मधुसूदन से बात करेंगे।

बाद में उन्होंने भिक्षु मधुसूदन से बात की। उन्होंने कहा कोई उपाय सोचेंगे।

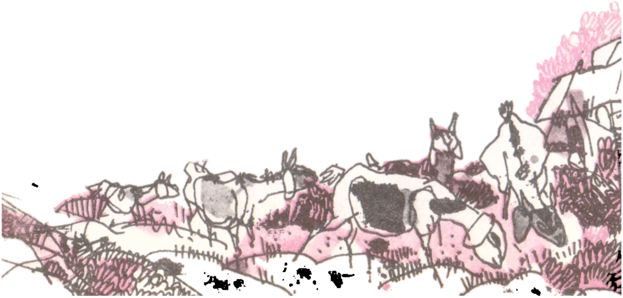
"बच्चे की इच्छा कुछ देने की है तो उसे निराश नहीं करना चाहिए," उन्होंने कहा।

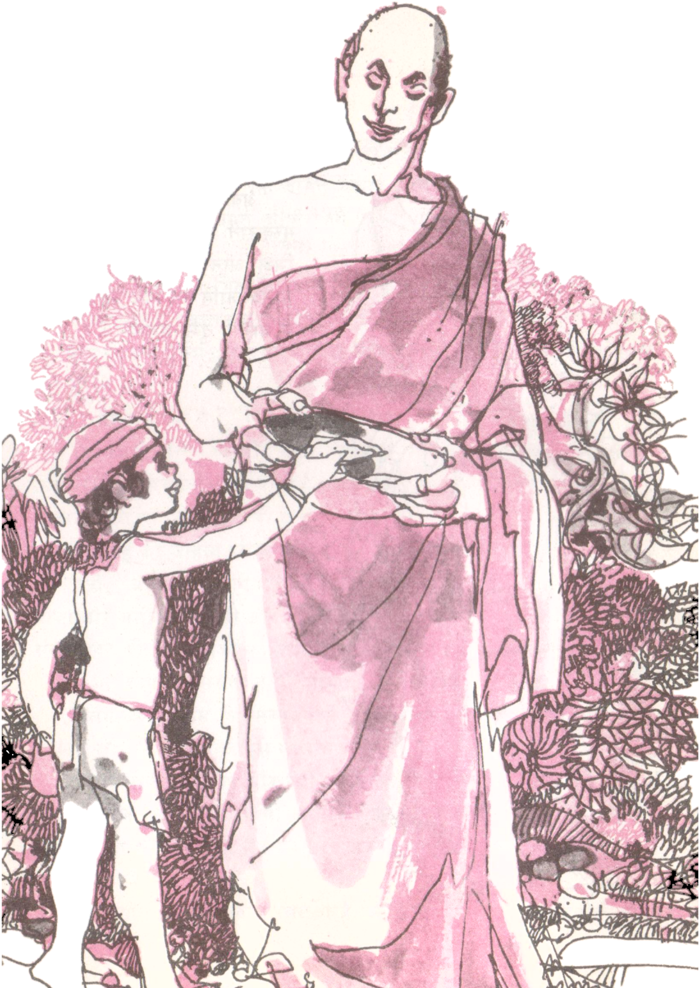
कुछ दिनों बाद जब जीमुत उधर आया तो दो भिक्षु उसका इंतजार कर रहे थे।

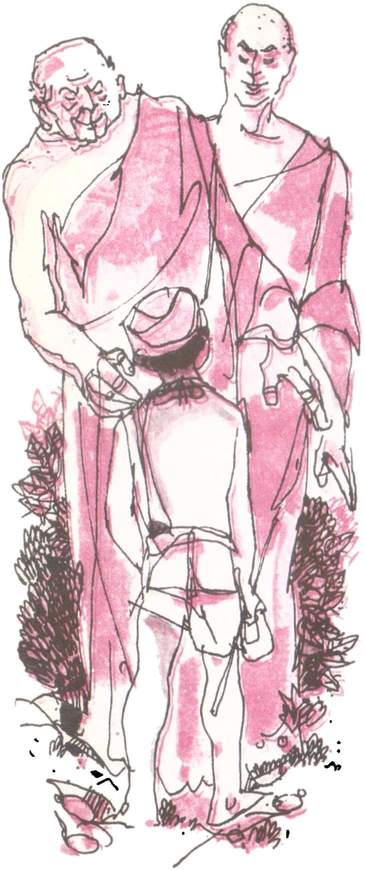
"हम तुम्हारे कृतज्ञ हैं कि तुम हमारी सहायता करना चाहते हो," बड़े भिक्षु ने गंभीरता से कहा, "हर सातवें दिन पात्र यहाँ रख दिया जायेगा। उस दिन यात्री आते हैं और हमें अधिक भोजन की जरूरत पड़ती है। अपने भोजन को किस तरह बाँटो, यह भी मैं बताऊँगा। अपनी रोटी के दो हिस्से करना, फिर एक हिस्से के तीन हिस्से करना। देखो, इस तरह। और उनमें से एक टुकड़ा पात्र में रख देना।"

"लेकिन वह तो बहुत जरा-सा होगा," जीमुत बोला।

"उदारता और प्रेम से दी हुई छोटी-सी भेंट का महत्त्व भगवान बुद्ध के लिए बहुत होता है और छोटी-छोटी अनेक भेंटें मिलकर बड़ी हो जाती हैं। पत्थर से बने हुए इस विहार को देखो। कई वर्षों में अनेक गरीब-अमीर दाताओं ने अपना-







अपना योगदान दिया है और तब यह विशाल कक्ष तैयार हुआ है जहाँ भगवान बुद्ध की आज पूजा होती है।"

"अब तुम जाओ," भिक्षु ने मुस्कराते हुए कहा, "किसी दिन भिक्षु आनंद भगवान बुद्ध और मानव जाति को दिये उनके संदेश के बारे में तुम्हें बतायेंगे।"

कुछ दिनों तक जीमुत फिर दिखायी नहीं पड़ा। एक दिन गाँव की एक स्त्री ने भिक्षु आनंद को बताया कि जीमुत बुखार में पड़ा हुआ है। जड़ी-बूटी और पत्तियाँ लेकर आनंद जीमुत के घर गये। एक सप्ताह के उपचार के बाद वह ठीक हो गया।

बीमारी के दौरान भिक्षु आनंद के साथ जीमुत की मित्रता गाढ़ी हो गयी। अब जीमुत अनेक सवाल पूछता रहता।

चैत्य गुफा के प्रवेश द्वार पर एक ऊँचा स्तंभ था। उसके शीर्ष पर चार जानवर बने हुए थे।

"ये जानवर क्या है?" एक दिन उसने पूछा।

"ये सिंह है, उत्तर की ओर बहुत होते हैं," भिक्षु आनंद बोले। "कभी-कभी ऊँचे स्तंभों के ऊपर इन्हें खोदा जाता है। यह विशाल स्तंभ गोटी के पुत्र अग्निमित्रनक ने दान किया था। वह महारथी थे।"

"यहाँ रह कर उन्होंने इसे बनाया था?" जीमुत ने शर्माते हुए पूछा।

"नहीं," आनंद मुस्कराये। "गुफाएँ कई लोगों के भेंटों से मिल कर बनी हैं। राजा और अमीर, व्यापारी और शिल्पी, हल चलानेवाले और टोकरी बनानेवाले, सबने मदद की है। गुफाओं का निर्माण कुशल संगतराशों ने किया है।"

"मैं यह काम कर सकता हूँ?" जीमुत फिर शर्माया।

"अलग-अलग काम के सिखानेवाले लोग अलग-अलग हैं। उनकी देखरेख में काम करने से पहले बहुत कुछ सीखना पड़ता है।"

स्तंभ के पीछे एक पुरुष और स्त्री की आकृति खुदी हुई थी। आनंद ने कहा, "वह देवपाल और उनकी पत्नी क्षमा हैं। वे कर्जक में रहते हैं। मठ के लिए उन्होंने बहुत-सी जमीन दी है। इसीलिए उनकी स्मृति में उनकी आकृतियाँ यहाँ तराशी गयी हैं।"

"इन जमीनों से हमें अनाज मिलता है जिससे मठ और मठ के मेहमानों का

काम चलना है। धनी लोग हमारी जरूरतें पूरी करते हैं ताकि हम अपना पूरा समय ज्ञान प्राप्त करने और धर्म की शिक्षा देने मे लगा सकें। कभी-कभी अनाज बेचकर मठ में जलाने के लिए तेल खरीदा जाता है। एक भिक्षु को गेरुए वस्त्र और मामूली से भोजन की जरूरत पड़ती है। अंदर आओ। बाईं ओर से पाँचवें स्तंभ को देखो। इसे धेनुकाकट के यवन ने भेंट किया था। तीसरा और अन्य स्तंभ भी यवनों की ओर से भेंट में मिले हैं, ये यवन दूर-दूर के देशों से आये थे।"

अब भिक्षु मधुसूदन बोले, "सुंदर पीपल का तोरण, उस पीपल की याद में बनाया गया है जिसके नीचे बैठकर बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुआ था। जो इस गुफा में प्रवेश करता है उसे ज्ञान और सत्य की खोज रहती है। अगर अंदर आने का समय नहीं है तो वहीं पीपल तोरण के नीचे खड़े हो जाओ और कहो—ओम मणि पद्य हुम, बुद्ध अपने कमल सिंहासन पर विराजमान हैं। तुम्हें शांति मिलेगी, कभी कोई कष्ट हो या किसी परेशानी में पड़ो तो बुद्ध तुम्हें शांति देंगे। कष्ट दूर हो जायेगा या उसका अनुभव नहीं होगा।"

भिक्षु आनंद ने भी सम्राट अशोक के विषय में जीमुत को बताया। युद्ध में सदैव विजयी अशोक ने किस तरह शांति का व्रत ले लिया। अशोक ने दूर-दूर तक भगवान बुद्ध के संदेश का प्रचार किया और इस प्रकार बुद्ध का उपदेश मध्य भारत तक आया।

पश्चिमी भारत के पहाड़ों पर जो गुफा-विहार थे उनके विषय में भी आनंद ने जीमुत को बताया। कारला के नजदीक ही भाजा-विहार के विषय में भी बताया। नासिक के विहार की भी चर्चा की। उन्होंने कहा, "बुद्ध का प्रभाव देश के सभी शासकों पर पड़ा, चाहे वह किसी धर्म का रहा हो या किसी विश्वास का। गेरुए वस्त्रधारी भिक्षुओं का आदर और उनकी सहायता सभी करते थे।"

विदेशी शासक अश्वदत्त की बात भी बतायी जो शक सत्रप के दामाद थे, नहपाना, जिनके शिलालेख कारला और नासिक दोनों जगह हैं। उन शिलालेखों में लिखा है कि ब्राह्मण और भिक्षु दोनों को दान मिलता था। उन्होंने ब्राह्मणों को गायें दी थीं और नासिक की बौद्ध गुफा के खर्चे के लिए आठ सौ पेड़ों का नारियल का बगीचा दिया था। कारला और नासिक दोनों के शिलालेखों में लिखा है



कि किस प्रकार सतकर्णी शासकों ने शक क्षत्रपों को हराकर उनकी दी हुई भेंट में वृद्धि और सुधार किया। दरवाजे के ऊपरवाले शिलालेख में लिखा था कि राजा गौतमी पुत्र ने अपने पूर्वज शासकों द्वारा भिक्षुओं को दिये जानेवाले दानों में सुधार किया और उन्हें स्थायी बनाया।

गरीब लोग भी भिक्षुओं को कुछ न कुछ देना चाहते थे। आनंद ने पत्थर की बनी कमरबदनुमा पेटी की ओर इशारा किया जो गुफा प्रवेश के तोरण के नीचे बनी हुई थी। यह भिक्षुणी अश्वधमिना ने भेंट की थी जिसके लिए कई सहृदय व्यक्तियों से उसने दान लिया होगा।

भूतपाल नाम के एक व्यापारी ने प्रवेश के दोनों ओर पाँच मंज़िल वाले तोरण द्वार बनवाये थे। सुदूर पश्चिम से आनेवाले यवन व्यापारियों के बारे में जानने के लिए जीमुत बड़ा व्यग्र रहता। वे समुद्र के रास्ते आते थे। आनंद ने उसे बताया, "बहुत पहले वे एक युवा विजेता सिकंदर के साथ आये थे, लेकिन बाद में वापस चले गये। अब वे शांतिपूर्वक व्यापार के उद्देश्य से आते हैं। बुद्ध की शिक्षाओं में उनकी रुचि है।"

जीमुत को पता चला कि कई दान देनेवाले--यवन, और अन्य लोग, इत्र का व्यापारी सिहदत्त और बढ़ई सामीना, धेनुकाकाट से आये थे--कुल चौदह। उसे खुशी हुई कि लोग बुद्ध और उनके भिक्षुओं को इतना चाहते थे।

एक शाम घर आते समय जीमुत जब अपनी बकरियों को गिनने लगा तो उसे पता चला कि एक बकरी कम है। सुंदर चमकीले काले रंग की बकरी गायब थी। जीमुत जानता था उसका चाचा उसे माफ नहीं करेगा।

अँधेरा बढ़ रहा था। जीमुत ने सोचा बाकी बकरियों को घर पहुँचा देना अच्छा रहेगा। रात में उठकर वह खोई हुई बकरी ढूँढ़ने चला आयेगा।

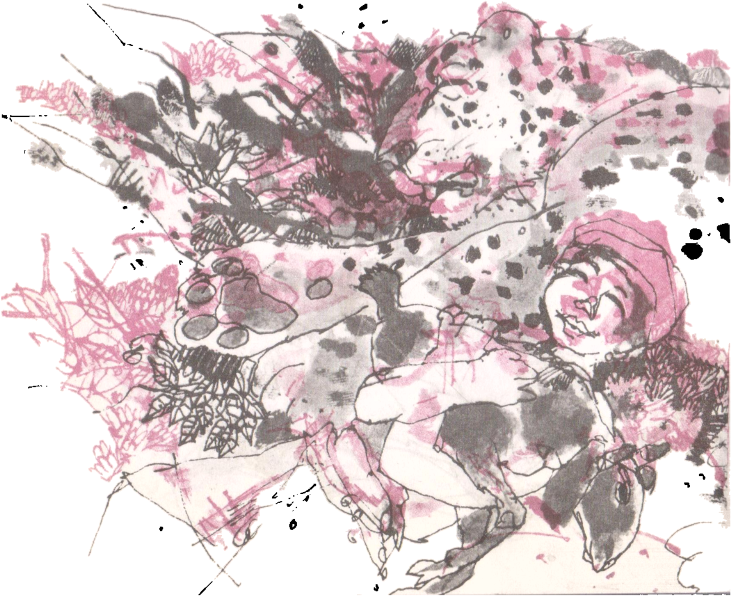
रास्ते में एक बूढ़े भिक्षु ने उससे कहा, "जल्दी घर जाओ, गाँववाले कह रहे थे इधर चीता आया है।"

जीमुत ने मन ही मन सोचा, "वापस तो मुझे आना ही है, चीता आया हो या न आया हो।" और जैसे ही सब लोग सो गये, वह पहाड़ की ओर चल पड़ा।



जीमुत थका हुआ था। उसे डर भी लग रहा था। जैसे-जैसे ऊपर चढ़ रहा था, उसे रोना आने लगा। वह धीरे-धीरे रोने लगा। तभी उसे भिक्षु मधुसूदन का बताया हुआ मंत्र याद आया। उसने उसका उच्चारण किया और दोहराने लगा। थोड़ी ही देर में उसकी थकान और भय जाता रहा। उसने सोचा शायद मैं बेकार ही डर गया था। चीता तो इतने ऊपर चढ़ भी नहीं सकता। लेकिन गर्मी से और खाने की कमी की वजह से चीता कब कहाँ मिल जायेगा, कहा नहीं जा सकता।

वह ऊपर चढ़ता गया। अचानक उसे बकरी के मिमियाने की आवाज़ सुनायी पड़ी। जीमुत को देखकर बकरी खुशी से मिमियाने लगी। तभी उसके स्वर में



भय का आभास हुआ। जीमुत ने घूमकर देखा, रात में चमकती हुई दो हरी आंखें दिखायी पड़ी। एक काली आकृति बढ़ी आ रही थी। वह चीता था।

जीमुत ने अपनी मज़बूत लाठी इधर-उधर घुमायी और जानवर को डराने के लिए विचित्र आवाज़ निकाली।

इसके बाद जीमुत को पता नहीं चला क्या हुआ। शायद चीता बकरी की ओर झपटा। दूरी का अंदाज़ उसे ठीक नहीं हो पाया और नीचे पथरीली ज़मीन पर गिर पड़ा। भयभीत बकरी चट्टान से नीचे गिर पड़ी। जीमुत गिरते हुए चीते से टकराता हुआ उसी के साथ नीचे गिर पड़ा। चीते का जबड़ा और उसका चेहरा एक दूसरे से बिल्कुल सटे थे।



चीते के साँस की गरमाइ जीमुत को अपने गालों पर लगी। उसके होंठ बुदबुदा रहे थे, "ओम् मणि, पद्मे हम।" चीता एक बार दर्द से ऐंठा और फिर ढेर हो गया। चट्टान से उसकी पीठ बुरी तरह घायल हो गयी थी। जीमुत थक कर चूर हो गया था। वह चीते के शरीर मे लगा सो गया। बकरी को उसने अपने हाथों मे घेर रखा था।

आसमान काले से भूरा होने लगा। सुबह का पक्षी बोला और जीमुत की नींद टूटी।

बकरी की एक टाँग टूट गयी थी। जीमुत ने उसे अपने कंधे पर उठाया और घर की ओर चल पड़ा। गाँव की सीमा पर उसकी मुलाकात अपने चाचा और दूसरे गाँववालों से हुई। वे उसीकी तलाश कर रहे थे। जीमुत ने बकरी चाचा के हवाले कर दी।

"क्या! मेरी सबसे अच्छी बकरी का पैर तोड़ लाया?" काल्हा चिल्लाया और अपनी छड़ी उठाये जीमुत की ओर बढ़ा।

गाँव के एक बुजुर्ग बीच में आ गये।

"मारो मत। इसके साथ तुम शुरू से बहुत ज्यादती कर रहे हो। अब हम लोग इसे भिक्षुओं के हवाले कर देंगे।"

जीमुत को उन्होंने भिक्षु मधुसूदन के हवाले कर दिया।

"जब चीता मुझ पर झपटा मैंने भगवान बुद्ध का नाम लिया। उन्होंने मेरी रक्षा की," जीमुत ने बताया।

बूढ़े भिक्षु मुस्कराये।

"अभी तो तुम्हें बहुत कुछ सीखना है, बेटे। लेकिन तुम सीखने की योग्यता रखते हो," उन्होंने कहा।

उस दिन से जीमुत की जिंदगी ही बदल गयी। अब वह भिक्षुओं के साथ रहता, उनकी सेवा करता और बुद्ध के उपदेश सुनता।

कुषाण वंश का शासन काल था। मथुरा शहर में उस दिन अच्छी धूप निकली थी। कारीगरों के घरों में काम और बिक्री तेजी से हो रही थी। सड़कें सँकरी थी, लेकिन भीड़ लगी हुई थी। मथुरा कई शताब्दियों पुराना शहर था, कुषाण वंश के साम्राज्य की विशाल सीमा में फल-फूल रहा था।

एक छोटे से कारखाने के दरवाजे पर खड़ी केतकी डूबते हुए सूर्य को देख रही थी। उसके पीछे का कमरा कारखाना भी था और रहने-सोने का कमरा भी। उसका बूढ़ा ससुर मथुरा का प्रसिद्ध लाल बलुआ पत्थर हाथ में लिए हुए था। उसका पति दूसरे कारखाने से वापस आनेवाला था। वह दूसरे संगतराशों के साथ लाल, गुलाबी और चितकबरे बलुआ पत्थरों से बड़ी-छोटी मूर्तियाँ बनाता था।

आखिर उसका पति आया और केतकी क्षितिज पर एक नज़र डालकर उसके पीछे घर के अंदर चल दी।

"उस निकम्मे का तुम्हें अब भी इंतजार है?" उसने गुस्से से कहा, "और कल उसकी वापसी की प्रार्थना करने मंदिर भी जाओगी।"

"उसके कल्याण और वापसी दोनों के लिए प्रार्थना करूँगी," केतकी बोली, "जैसे तुम्हारे लिए, तुम्हारे पिता के लिए और दूसरे बच्चों के लिए करती हूँ।"

"दूसरे बच्चे लायक हैं, काम करते हैं," पति ने कहा।

केतकी ने थाली परोस कर उसके सामने रख दी। चावल, दही, कद्दू का साग, हल्के धातु और मिट्टी की बनी कटोरियों में रखे थे।

"लायक तो है," केतकी के ससुर ने कहा। "लेकिन मार्ची की बात और थी। मुझे अच्छी तरह याद है जब वह नौ साल का था उसने बंदर का एक ढाँचा बनाया था। कैसी चमक थी उसकी आँखों में। सात साल का ही था तो मेरी यात्राओं के बारे में पूछा करता था। पूछता था कि संगतराशों के साथ मैं कहाँ जाता हूँ, क्या करता हूँ।"

"और अब देखो न, उसकी आँखों की चमक उसे कहाँ ले गयी। माली की

बेटी से बात करता तो उसकी बात ही न खत्म होती। और जब हमने मारा तो घोड़े के उस शक व्यापारी के साथ भाग गया। उसको घर से गये पूरे बारह साल हो गये। न जाने कहाँ होगा अब ?" केतकी ने तीखे स्वर में कहा।

रात हो गयी तो कमरे में अँधेरा छा गया। उन दिनों जलाने के लिए तेल की कमी रहती थी।

दूसरे दिन केतकी अपनी पड़ोसिन की बेटी साथ लेकर मंदिर गयी जो दूसरी ओर था। केतकी ने अपने बेटे का ब्याह उसी से करने की बात सोची थी। अब भी वह अपनी बात पर अड़ी थी।

तभी मथुरा की ओर एक कारवाँ आता हुआ दिखायी पड़ा। यात्रियों में से एक आदमी बड़ा बेचैन होकर आगे बढ़ आया था। निश्चित रूप से इतने बड़े नीम और कदंब के पेड़ या इतने सारे हरे तोते मथुरा के अलावा और कहीं नहीं हो सकते।

तभी उसने अपनी माँ को देखा। अभी भी वैसी ही सीधी और लंबी जैसी वह छोड़कर गया था। तभी उसकी माँ भी मुड़ी और उसे देखने लगी।

"तुमने मुझे पहचान लिया ?" उसने पूछा।

"तुम्हारा ख्याल था कि नहीं पहचानूँगी ?" माँ बोली। "चलो, जल्दी से घर चलो।"

"और अगर पिता जी घर से निकाल दें ?" मार्ची ने पूछा।

"ऊपर से गुस्सा हो सकते हैं, लेकिन मैं जानती हूँ मन-ही-मन तुम्हारे लौटने की कामना करते रहते हैं।"

तब वह लड़की की ओर मुड़ी।

"घर जाओ बेटी, जब तक मैं तुम्हें बहू बनाकर अपने घर न लाऊँ . . ."

झोंपड़ी के पास वाले कुएँ पर दोनों ने हाथ मुंह धोया, फिर केतकी ने खाना बनाया।

मार्ची के घर में घुसते ही उसके पिता का चेहरा चमक उठा। खाने के बाद उन्होंने कुएँ पर हाथ-मुँह धोया। फिर बातचीत करने बैठे। पिता ने पूछा, "तो



आप लौट आये ? अपने उस शक दोस्त से कौन-सी कला सीख कर आये हो ? घोड़े के व्यापारी झूठे और चोर होते हैं।"

"राजा, रईस और धनी लोग शकों को अपने यहाँ सईस या पहरेदार रखना पसंद करते हैं। मथुरा के शिल्पी शक सिपाहियों की मूर्तियाँ बनाते हैं। चौड़ा चेहरा, भारी लंबी तलवारें, उत्तरी पोशाक ––घुड़सवारों के जूतों सहित, और फिर शक हमारे शासक भी तो रह चुके हैं।"

"तो इसमें क्या ?"

"अब तो नहीं। शकों की ही तरह दिखायी पड़नेवाले कुषाण एक लंबे अरसे से शासन करते आ रहे हैं।"

"जब तक शासन हमसे ज्यादा कर नहीं लेते या उनके अधिकारी हमारे साथ जुल्म नहीं करते क्या फर्क पड़ता है कि राज्य किसका



है। लेकिन मथुरा का एक शिल्पी घोड़ों के व्यापारी से दोस्ती करे इसमें क्या तुक है?"

"यात्रा के दौरान एक शक व्यापारी अच्छा दोस्त है। उसके तेज़ तर्रार घोड़ों और साइसों के डर से उस पर कोई हमला नहीं करता। न जाने कितनी भाषा वह बोल सकता है, न जाने कितने लोगों को वह जानता है। व्यापारी लोग झुण्ड बनाकर यात्रा करते हैं। उनके कारवाँ का एक मुखिया होता है। सुरक्षा के लिए सशस्त्र पहरेदारों को ये लोग नौकर रखते हैं। अनेक देशों की कहानियाँ कहते हैं। उनके उत्पादन के विषय में बताते हैं। उत्तर से बकरी के बाल से बना मुलायम गर्म कपड़ा आता है। ऊँटों का कारवाँ पहाड़ और रेगिस्तान पार करके त्सिन पट्ट लाता है। सुदूर पश्चिम के लोगों को यह कपड़ा बहुत पसंद है। यवन अपने देश से शराब लाते हैं। यह शर्बत की तरह का होता है। अपने साथ ये यवन बर्तन,



मर्तबान और मूँगे भी लाते हैं। ये चीजें हमारे यहाँ अमीर व्यापारी और रईस लोग बहुत पसंद करते हैं।"

बाबा बीच में बोले, "दही, घी और मिठाई के लिए तो हमारा मथुरा मशहूर है।"

माँ की ओर देखकर मार्ची प्यार से मुस्कराया और फिर कहने लगा, "सबसे ज़्यादा तो मथुरा की बनी हुई मूर्तियाँ प्रभावित करती हैं। चारों ओर देखो, यह राज्य व्यापार, कौशल और समृद्धि का राज्य बन गया है। अब मुझे कारवाँ सराय लौट जाना चाहिए। कोई फालतू टुकड़ा है जिससे मैं कुछ बना सकूँ? बंदर की हड्डी या पत्थर का कोई टुकड़ा?"

"बंदर की हड्डी तो बड़ी सस्ती लगती है। पत्थर का एक फालतू टुकड़ा है। तुम ले सकते हो," पिता ने कहा।

अँधेरा चारों ओर फैल गया। लेकिन माँ और बेटे सितारों के नीचे, पानी के बर्तनों के पास सारी रात बैठे-बैठे बातें करते रहे।

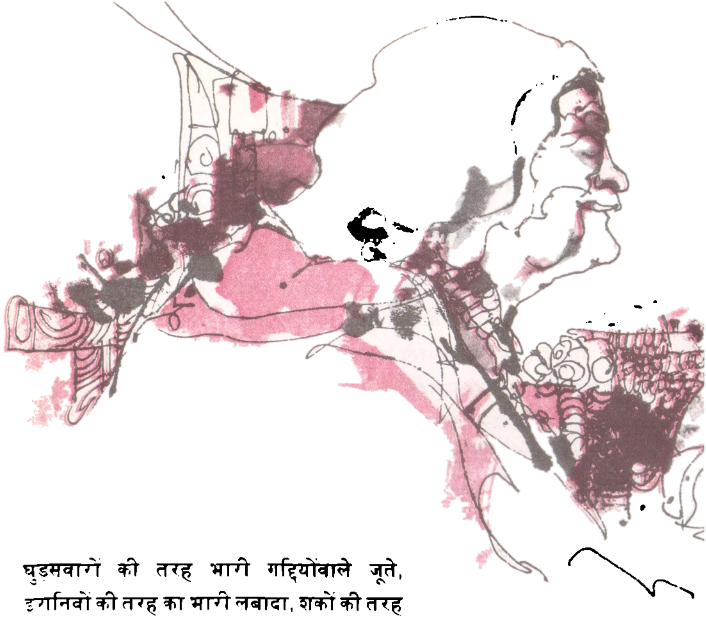
एक शाम, खाना खत्म होने के बाद, बूढ़े बाबा उत्सुक होकर बोले, "अब हम बैठेंगे। मेरा पोता अपनी यात्राओं की कहानियां सुनायेगा।"

मार्ची ने कहना शुरू किया :

"अब चूंकि सड़कों पर शांति है, व्यापारी ही नहीं साधु और विद्यार्थी भी एक देश से दूसरे देश आते-जाते हैं। विद्यार्थी विद्वान होते हैं। एक विश्व-विद्यालय में सात साल पढ़ने के बाद दूसरे विश्वविद्यालय में फिर सात साल पढ़ने के लिए जाते हैं। गेरुए वस्त्रधारी भिक्षुओं ने मुझे उन देशों के बारे में बहुत-कुछ बताया जहां मैं गया था। पहाड़ों के दूसरी ओर के देशों में भी मैं गया था। शक, पहलवा, कुषाण आदि नये शासक एक के बाद एक उधर से ही आये हैं।"

"यहां क्यों आते हैं वे?" बाबा ने पूछा।

"बर्फीले पहाड़ों के पार की धरती उतनी उपजाऊ नहीं जितनी हमारी नदियों की तराई या मैदानों की है," मार्ची ने समझाया। "वहां ऊंचे पहाड़ हैं या ठंडे रेगिस्तान या फिर घास के बड़े-बड़े मैदान जहां से भेड़ों को चारा मिलता है। जब दुश्मन हमला करते हैं, या बेहद ठंड पड़ने लगती है तो वहां रहनेवाले कबीले कहीं और चले जाते हैं जहां की जमीन ऊपजाऊ है और जहां बड़े-बड़े शहर हैं। इन जातियों के लोग मैदानों में रहनेवालों से अधिक ताकतवर होते हैं। लेकिन शक्ति में वे हमें चाहे हरा दें, हमारे ज्ञान के लिए वे हमारा आदर करते हैं। यवन, शक, पहलवा और दूसरे लोग पंचनद प्रदेश, उसके दक्षिण-पूर्व में दूर-दूर तक पहुंचे हैं। महान कुषाणों ने भी यहां तक की यात्राएं की हैं। कुषाण सम्राट कनिष्क की सबसे सुंदर मूर्ति मथुरा में तराशी गयी थी। पूर्व (चीन) में त्सिन की सीमा से होते हुए पश्चिम में उन्होंने ईरान तक की यात्रा की, फिर वे दक्षिण की ओर मुड़े, महानदी बाल्ख से काबुल नदी की ओर। तब एक बड़े पहाड़ी दर्रे को पार करके, पंचनद प्रदेश से होकर, हमारे यमुना के मैदानों में आ गये। संगतराशों ने उनकी मूर्तियों और उनके सिक्कों में उनका इतिहास खोदा है। खानाबदोश



घुड़सवारों की तरह भारी गद्दियोंवाले जूते, ईरानियों की तरह का भारी लबादा, शकों की तरह की नुकीली टोपी पहने हुए शासकों की मूर्तियाँ। मूर्तियों और सिक्कों पर जो शीर्षक खुदे हैं उनसे उनकी यात्राओं का पता चलता है। सम्राट के लिए 'महाराजा' शब्द का प्रयोग किया गया है। 'राजाधिराज' का प्रयोग भी मिलता है जो ईरानी उपाधि मालूम पड़ती है, और अंत में उसे देवपुत्र कहा गया है। यह उपाधि सुदूर त्सिन में प्रयोग की जाती है। इन सभी उपाधियों का ज़िक्र संस्कृत में है क्योंकि शक और कुषाण दोनों शासकों ने संस्कृत का प्रयोग किया है। संस्कृत विद्वानों की भाषा है।

"वेदों की पवित्र भाषा," बाबा बुदबुदाये। "यह भाषा सिर्फ ब्राह्मणों और पंडितों को आती है।"



मार्ची बोलता गया, "अब इसका प्रयोग राजा के दरबारी और कवि भी करते हैं। राजा की घोषणाएँ और आदेश सब संस्कृत में हैं। कनिष्क, बुद्ध के बहुत बड़े अनुयायी हैं, उन्हें द्वितीय अशोक कहा जाता है। उन्होंने मठ बनवाये हैं, अनेक विद्वान और कवि उनके दरबार में हैं। मथुरा के शिल्पियों ने इतनी प्रगति पहले कभी नहीं की थी। बुद्ध, जैन तीर्थंकर राजा और अमीर व्यापारी जितनी मूर्तियों की फर्माइश करते हैं, उतनी कारखानों में बनायी नहीं जा सकतीं। ब्राह्मण भी देवताओं की मूर्तियाँ चाहते हैं।"

"लेकिन जिसने निर्वाण प्राप्त कर लिया है, उसकी मूर्ति बनाना कोई खेल

नही, ऐसा हमें बताया गया है। बुद्ध के जीवन की घटनाओं के प्रतीक ही काफ़ी हैं," बाबा बोले।

"ऐसा था, बाबा," मार्ची ने कहा। "लेकिन अब महान संत नागार्जुन जो दक्षिणा-पथ में रहने के लिए आ गये हैं, कनिष्क और दूसरे लोग भी पूजा के लिए भगवान बुद्ध की मूर्ति देखना चाहते हैं। दूर-दराज़ के देशों में जहाँ-जहाँ गया, तक्षशिला, पुरुषपुर, गान्धार, हर जगह बुद्ध की मूर्तियाँ देखीं। मथुरा मे भी एक विद्वान ब्राह्मण अश्वघोष ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया, फिर उसने सम्राट् कनिष्क को दीक्षा दी। अब बुद्ध भगवान के अनेक अनुयायी हैं। सत्य के अलग-अलग रास्तों का अनुसरण वे करते हैं। इस प्रकार सम्राट ने एक सभा बुलायी। कश्मीर की घाटी, कनिष्कपुर में सभा का आयोजन हुआ। देश के कोने-कोने से पाँच सौ भिक्षु उपस्थित हुए। एक विद्वान भिक्षु वसुमित्र के साथ अश्वघोष ने सभा का संचालन किया। विचार-विमर्श के बाद शिक्षाओं को सबके लिए सहज बनाया गया। ताम्रपत्रों पर उनकी खुदाई हुई और एक बड़ी मीनार के नीचे उन्हें दबा दिया गया ताकि एक हज़ार साल बाद भी आदमी उन्हें पढ़ सके।"

"लेकिन महान विचारकों की शिक्षाएँ ताँबे या ताम्रपत्रों पर नहीं लिखी जा सकतीं," बाबा बीच में बोल पड़े।

"तब उन्हें सुरक्षित कैसे रखा जा सकता है?" मार्ची ने पूछा।

"स्मृति में। एक विद्वान दूसरे से कहता है, दूसरा तीसरे से, और यह सिलसिला चलता रहता है," बाबा ने उत्तर दिया।

"लेकिन तब इसका प्रचार दूर-दूर तक नहीं हो सकता," मार्ची ने आपत्ति की। "अब बहुत से लोग यह जानते हैं कि लिखना टिकाऊ तो होता ही है, इसमे झगड़े भी कम होते हैं। सत्य के सिद्धांतों को लेकर मतभेद भी कम होते हैं।"

"क्या झगड़े भी होते थे?" बाबा ने पूछा।

"बिल्कुल होते थे," मार्ची ने उत्तर दिया। "बौद्ध धर्म की प्रमुख शाखा में दो प्रकार के विश्वास हैं। दक्षिण के भिक्षु कहते हैं कि बुद्ध एक महान उपदेशक थे। जिन्होंने निर्वाण प्राप्त किया था और कोई भी उनके बताये हुए रास्ते पर चल कर

जन्म-मरण के फंदे से छूट सकता है। लेकिन अब उत्तर के भिक्षु कहते हैं कि बुद्ध भगवान थे और उनकी पूजा होनी चाहिए। उनका कथन है कि बुद्ध ने पहले भी धरती पर अवतार लिये थे, और आगे भी लेते रहेंगे। जब तक निर्वाण सबको उपलब्ध नहीं हो जायेगा, वह स्वयं निर्वाण नही पाना चाहते। इस प्रकार हम उनके पहले के अवतारों की, जिन्हे बोधिसत्व कहते हैं, मूर्तियाँ बनाते हैं।"

"सम्राट दोनों में से किसे मानते हैं?" बाबा ने पूछा।

"दोनों अलग नहीं है," मार्ची ने समझाया। "सभी बुद्ध, संघ और धर्म पर विश्वास करते है और कहते है कि उन्हीं के द्वारा निर्वाण खोजा और प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन सम्राट चूँकि उत्तर के हैं इसलिए दूसरे, यानी महान चक्रयान पर विश्वास करते है . . .

"महान कुषाण सम्राट कनिष्क ने जो विहार अपनी राजधानी पुरुषपुर में बनवाया है, देखने योग्य है," मार्ची कहता गया। "इसमें चौदह मंज़िलों की एक मीनार है, ऊपर लोहे का एक विशाल कंगूरा है। उसके चारों ओर ताँबे की छतरियाँ लगी है जिन पर सोने का पानी चढ़ा है। बुद्ध की मूर्तियाँ किनारे पर बनी हैं।"

"हम इस तरह नहीं बनाते," पिता ने कहा।

"सम्राट कभी-कभी यवन कारीगरों से काम करवाते हैं," मार्ची ने कहा। "इस तरह के विहार वे ही बनाते हैं।"

"और अब हमें सो जाना चाहिए," केतकी बोली। "कल शाम वे सारी चीज़ें तुम हमें दिखलाना जो अपने साथ लाये हो।"

दूसरी शाम सब लोग खाना खाकर बैठे, तो मार्ची ने चीज़ें दिखानी शुरू कीं जो वह अपने साथ लाया था——सफ़ेद सीपियों का बना हुआ एक कंगन और चमकते हुए धातु के डिब्बे में रखा हुआ तृणमणि का सेट अपनी माँ के लिए, विचित्र डिज़ाइनों वाला मोटा गरम कम्बल बाबा के लिए . . .

"यह कश्मीर का है। वहाँ की पहाड़ी बकरियों के बाल लंबे होते हैं। उन्हीं बालों से ऊनी धागे बनते हैं और फिर उनसे गर्म कपड़े बनाये जाते हैं।"

तब मार्ची ने सोने का एक सिक्का निकाला। सब स्तब्ध होकर देखने लगे।

"यह तुम्हें कहाँ मिला ?" पिता ने पूछा। "हमारे यहाँ ताँबे का सिक्का या कौड़ियाँ चलती हैं, कभी-कभी चाँदी भी चल सकती है, लेकिन सोना ? वह तो



हमारे यहाँ नहीं चलता।"

"मैंने जंगल में एक व्यापारी के कारवाँ को डाकुओं से बचाया था, तब उसने यह मुझे इनाम में दिया था। देखिए पिताजी, इस सिक्के में एक ओर घुड़सवारों का कोट पहने राजा है, दूसरी ओर बुद्ध की मूर्ति खुदी है। नाम एक किसी अनजानी लिपि में लिखा हुआ है। सुदूर पश्चिम में यही लिपि चलती है।"

पिता सिक्के को उलट-पलट कर देखता रहा।

"शिल्प का कितना बढ़िया नमूना है," उसने कहा।

मार्ची बोला, "मुझे बताया गया था कि सोने के सिक्के सुदूर पश्चिम (रोम) से आते हैं। उन पर राजाओं और देवताओं की छवि बनी होती है। इनसे व्यापार होता है। वे लोग मसाले, कीमती पत्थर, जड़ी-बूटियाँ, सुगंधि हमसे ले जाते हैं। ये सामान जमीन और समुद्री दोनों ही रास्तों से जाता है। इन चीज़ों के बदले



वे सोने के खरे सिक्के देते हैं। हमारे यहाँ उन सिक्कों को गलाकर फिर से नये सिक्के बनाये जाते हैं। उन पर नयी मुहरें लगती हैं, तब ये बाजार में आते हैं।"

"आपको पता है पिताजी, मैंने हाथी दाँत पर खुदाई का काफी काम किया है." मार्ची ने पिता को बताया।

"हाथी दाँत तुम्हें मिल जाता था? इस पर तो इतना कर लगता है कि एक कारीगर कठिनाई से इसका एक टुकड़ा पा सकता है।"

"अगर कारीगर बढ़िया हो, उसका हाथ साफ हो तो व्यापारी लोग हाथी-दाँत भी देते हैं और उसे तराशने की मज़दूरी भी," मार्ची बोला। "हाथी-दाँत से बनी हुई चीज़ों की बड़ी माँग है और देखिए यहाँ आने के बाद मैंने क्या तराशा है।"

पत्थर के एक टुकड़े पर एक लड़की की छवि खुदी हुई थी। उसके बाल लंबे थे, लग रहा था अभी धोकर आयी है, बालों से पानी चू रहा था। नीचे एक हंस अपनी गर्दन और चोंच ऊपर उठाये, पानी की बूँदों को खुली हुई चोंच में पी रहा था।

पिता को खुशी हुई।

"कितने दिन मथुरा में ठहरना है?" उसने पूछा।

"मैंने अपने लिए बहू ढूँढ़ ली है," केतकी बोली। "वह हमारे पड़ोसी की बेटी है, उसका पिता संगतराशों के कारखाने में तुम्हारे साथ काम करता है।"

"अपनी ही जाति की लड़की से शादी, मथुरा में काम, और इतना हुनर! हमें और क्या चाहिए?" पिता खुश होकर बोला।

"यात्राएँ तो मैं बहुत कर चुका," मार्ची ने कहा। "मेरा ख्याल है, अब मैं काफी समय तक एक जगह टिक सकूँगा, जब तक घूमने की इच्छा फिर न जाग उठे। और अगर कभी मैं गया भी तो वापस ज़रूर आ जाऊँगा।

समुद्रगुप्त और साईस का बेटा

347 ईस्वी का समय था। पाटलिपुत्र में बड़ी चहल-पहल थी, बड़ी उत्तेजना थी। सम्राट समुद्रगुप्त एक नयी युद्ध-यात्रा पर जा रहे थे।

महान मौर्यों के बाद कई शताब्दियों मे निरंतर युद्ध होता रहता था। तब 32 ई० मे वहां एक नये चंद्रगुप्त ने गंगा की घाटी में अपनी सत्ता स्थापित की।

चंद्रगुप्त ने अपना उत्तराधिकारी अपने बेटे समुद्रगुप्त को बनाया था। 347 ई० तक समुद्रगुप्त ने गंगा की घाटी के सभी राजाओं को हरा दिया था और हिमालय से नर्मदा नदी तक, पूरे उत्तर भारत में अपना शासन जमा लिया था। अब एक बहुत बड़े और खतरनाक सैनिक अभियान पर जाना था, नर्मदा के दक्षिण में विंध्य की पहाड़ियों और जंगलों मे, जहाँ यातायात और संपर्क बहुत मुश्किल था।

शाही अस्तबल मे गांधार से आया समुद्रगुप्त का मनपसंद घोड़ा, राक्षस बिगड़ा हुआ था। छूने से ही वह मालिक की आज्ञा समझ जाता था। उसे बस दो व्यक्ति काबू में ला सकते थे, एक साईस वेणु और दूसरा उसका नौ साल का बेटा। वेणु ने राक्षस की देखरेख शुरू से की थी और उसका बेटा जब से घुटनों के बल चलने लगा था, अस्तबल में ही पला था। वेणु तेज़ बुखार में पड़ा हुआ था और दूसरे साइसों को राक्षस दुलत्ती झाड़कर दूर फेंक रहा था।

"वेणु का बेटा अश्वदत्त कहाँ है?" एक साईस ने पूछा।

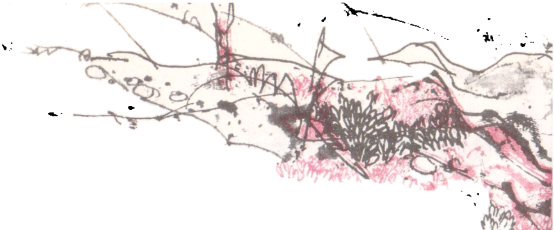
"उसकी माँ ने उसे बंद कर रखा होगा, इस डर से कि कहीं वह सेना के साथ भाग न जाय," बुजुर्ग मुख्य साईस बोला और वेणु की झोंपड़ी की ओर चल पड़ा।

वेणु की पत्नी और माँ वहीं थे।

"अश्वदत्त कहाँ है?" सुवर्ण ने पूछा।

"वह यहाँ नहीं है," दोनों एक साथ बोलीं।

"अश्वदत्त से कह देना राक्षस के लड़ाई पर जाने से पहले आकर उससे विदा



लेले।"

वेणु की माँ फूट पड़ी।

"तुम चाहते हो विंध्य के जंगली चीते अश्वदत्त को खा जायें?"

"वेणु का बेटा मुझे उतना ही प्यारा है जितना मेरा अपना बेटा," सुवर्ण ने कहा और बाहर चला गया।

उसके जाते ही स्त्रियों ने एक दूसरे की ओर देखा।

"कल सम्राट चले जाएँगे। फिर शाम तक हम अश्वदत्त को छोड़ देंगे।"

उसी शाम सम्राट को पता चला कि युद्ध अभियान में राक्षस उनके साथ नहीं जा सकेगा।

समुद्रगुप्त अस्तबल तक आये। राक्षस उनसे मिलने के लिए आगे बढ़ा। साईम उसकी ओर लपके और वह फिर बिगड़ गया।

"ऐसे काम नहीं चलेगा," सम्राट बोले। "घोड़े की देखरेख के लिए किसी को रखना ही होगा।"

तभी एक बच्चे का तेज़ स्वर सुनायी पड़ा।

"मैं इसकी देखरेख करूँगा," और एक गंदा, फटेहाल, छोटा बच्चा सामने आया। घोड़ा हिनहिना कर उसकी ओर भागा। बच्चे ने निडर होकर उसे थप-थपाया। दोनों खड़े रहे।

"कौन हो तुम?" सम्राट ने पूछा।

"वेणु का पुत्र है, महाराज," सुवर्ण ने उत्तर दिया।

"मेरी दादी ने मुझे बंद कर दिया था, लेकिन अगर सम्राट का घोड़ा मुझे चाहता है तो सम्राट के साथ जाने का हक मुझे है। इसीलिए झाड़ में एक सूराख़



बना कर मैं भाग आया हूँ। उसी झाड़ में मेरी दादी ने मुझे बंद कर दिया था." अश्वदत्त ने कहा।

"हमें तुम्हारी ज़रूरत तो है," सम्राट मुस्कराये, "लेकिन तुम्हारी दादी और माँ की राय ज़रूरी है। उनसे जल्दी ही पूछ लेना चाहिए।"

सुवर्ण उन्हें लेने चला गया।

वे आ गयीं तो समुद्रगुप्त ने पूछा :

"बच्चे को अपने राजा के साथ जाने की आज्ञा तुमने क्यों नहीं दी ?"

दादी दृढ़तापूर्वक बोली, "महाराज, अश्वदत्त अभी सिर्फ नौ साल का है। वह आपके साथ जाना चाहता है लेकिन जैसे आप अपनी माँ महारानी कुमारदेवी को चाहते हैं, उनका सम्मान करते हैं, उसी तरह इस बच्चे को भी अपनी दादी की बात माननी चाहिए।"

महान लिच्छवी वंश की पुत्री कुमारदेवी का विवाह समुद्रगुप्त के पिता चंद्रगुप्त से हुआ था, और इस प्रकार मगध पर उनका अधिकार स्थापित हो सका था। सम्राट माँ का सम्मान करते थे। बोले, "बच्चे को साथ ले जाने की अनुमति हमें दो। सुवर्ण उसकी देखभाल करेगा।"

"क्या तुम सौगंध खाते हो कि मेरे बच्चे को जीवित, स्वस्थ वापस लाओगे ?" दादी ने सुवर्ण से पूछा।

"मैं अपने बच्चे की तरह इसकी देखभाल करता रहूँगा।"

सुबह की यात्रा के लिए अश्वदत्त को फौरन तैयार किया गया। अश्वदत्त इतना खुश था कि खुशी के मारे विदा लेना भी भूल गया।

इस प्रकार अश्वदत्त, समुद्रगुप्त के सैनिक-अभियान के साथ, मध्य भारत और दक्षिण भारत की ओर चल पड़ा। सुवर्ण अपना वचन निभा रहा था। वह अश्वदत्त की देखरेख करता। अश्वदत्त का खाना सम्राट की रसोई मे आता था। नर्मदा के दक्षिण मे जंगल घने होते जा रहे थे और ज़मीन ऊँची-नीची। सेना को मिलनेवाला भोजन बदल गया था। खाने को मिलता बाजरा, जंगली फल और शिकार में मारे गये खरगोश, तीतर, बटेर और मोर।

सुबह की पूजा के लिए, तड़के उठकर सम्राट अक्सर अकेले जाया करते थे। प्रार्थना करते समय कमरबंद और सारे हथियार एक ओर रखे रहते थे। इमली, हरे आम या दूसरे जंगली फलों की तलाश में अश्वदत्त भी तभी उठकर चल देता था।

एक दिन सुबह, सम्राट पूर्व की ओर मुँह कर के जैसे ही खड़े हुए, एक धारीदार जानवर की झलक दिखायी पड़ी। जानवर उन पर झपटने ही वाला था कि किसी ने धनुष और बाण उनके हाथ मे पकड़ा दिया। यह अश्वदत्त था। आम के पेड़ मे उसने चीते को देख लिया था।

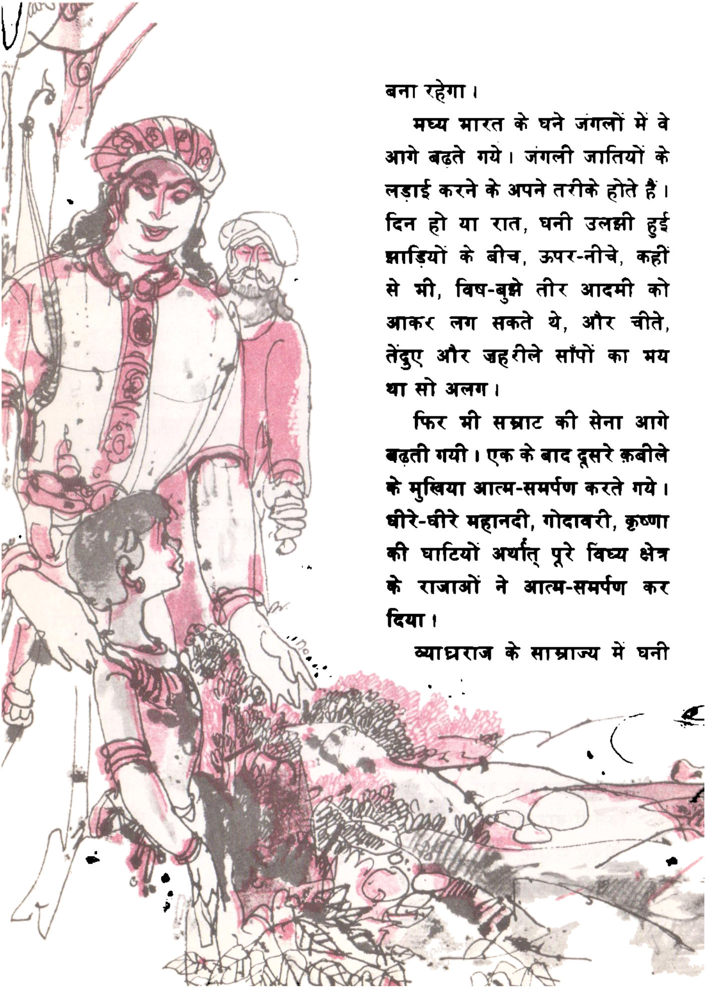
सम्राट का बाण जाकर चीते के गले में लगा। बुरी तरह ज़ख़्मी होकर चीता पीठ के बल लुढ़क गया। नौकर-चाकर दौड़ पड़े लेकिन अश्वदत्त ने शिकारी छुरा निकाल कर पूरी शक्ति से चीते के शरीर में भोंक दिया। चीता ढेर हो गया।

"अच्छा हाथ मारा," सम्राट बोले। तब सारे लोग इकट्ठे होकर राजा के हाथ की सफ़ाई की तारीफ़ करने लगे। सम्राट ने अश्वदत्त की ओर संकेत करके कहा, "तारीफ़ का पात्र मैं नही, यह छोटा बच्चा है।"

अश्वदत्त जब लौट कर आया तब सुवर्ण का चेहरा स्याह पड़ गया।

"कितनी बार मैंने कहा है कि जंगल में अकेले मत जाया करो?" उसने पूछा।

"लेकिन सम्राट की सहायता के लिए मेरा वहाँ रहना क्या ठीक नहीं था?" अश्वदत्त बोला और सुवर्ण की बाहों में समा गया। उसने सैकड़ों बार किये हुए वायदे को फिर दोहराया कि जंगल में अकेला नहीं जायेगा, आगे से आज्ञाकारी



बना रहेगा।

मध्य भारत के घने जंगलों में वे आगे बढ़ते गये। जंगली जातियों के लड़ाई करने के अपने तरीके होते हैं। दिन हो या रात, घनी उलझी हुई झाड़ियों के बीच, ऊपर-नीचे, कहीं से भी, विष-बुझे तीर आदमी को आकर लग सकते थे, और चीते, तेंदुए और जहरीले साँपों का भय था सो अलग।

फिर भी सम्राट की सेना आगे बढ़ती गयी। एक के बाद दूसरे क़बीले के मुखिया आत्म-समर्पण करते गये। धीरे-धीरे महानदी, गोदावरी, कृष्णा की घाटियों अर्थात् पूरे विंध्य क्षेत्र के राजाओं ने आत्म-समर्पण कर दिया।

व्याघ्रराज के साम्राज्य में घनी

झाड़ियो से निकल कर एक विष बुझा तीर सुवर्ण को लगा और वह मर गया।

अश्वदत्त का खाना-पीना बंद हो गया। उसे रात-रात भर नींद न आती। कभी आती भी तो बुरे सपने आते। वह इतना दुबला और पीला पड़ गया कि बात सम्राट से भी छिपी न रही।

"दुखी मत हो," उन्होंने कहा। "अगर तुम बीमार हो जाओगे तो राक्षस की देखभाल कौन करेगा। अब से तुम मेरे शयन-कक्ष के पासवाले कमरे में सोओगे।"

उस रात अश्वदत्त को बुरे सपने नहीं आये। उसके बादवाली रातों को भी नहीं। सम्राट का चलता-फिरता महल टहनियों और सरकंडों से बना हुआ था। चूंकि अश्वदत्त इसके बाहरी कक्ष में सोता था, वह मधुर संगीत का स्वर सुन सकता था। सम्राट के भीतरी कक्ष से संगीत की यह ध्वनि आ रही थी। अश्वदत्त रेंग कर टहनियों से बने हुए बेड़े तक पहुँचा और कान लगा कर सुनने लगा। अचानक भाले की नोक चुभी और एक गुर्राती हुई आवाज़ सुनायी पड़ी, 'चूहा! चूहा! यह यहाँ तक कैसे आया?'

अश्वदत्त डर गया था, लेकिन हिम्मत से बोला, "मैं अश्वदत्त हूँ, सम्राट के घोड़े का साईस। मैं यहाँ सिर्फ़ संगीत सुन रहा था।"

"शाही वाद्य सुनने की तुम्हारी हिम्मत कैसे पड़ी? अंतःपुर में ताक-झांक करनेवाले को मौत की सज़ा मिलती है, जानते हो?"



तभी एक दूसरा स्वर सुनायी पड़ा

"हमारे सम्राट संगीतज्ञों के शिरोमणि हैं। अगर यह बच्चा उनके संगीत से खिंचकर यहाँ चला आया तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं।"

अश्वदत्त ने सम्राट के घनिष्ठ मित्र और साथी पंडित हरिसेन का स्वर पहिचान लिया। हरिसेन सम्राट के दरबार में थे। हरिसेन अंदर चले गये, उन्हें सम्राट ने बुलाया था। उन्होंने सम्राट को अश्वदत्त की बात बतायी और उसे अंदर ले गये।

लंबे और रोबीले सम्राट ढीले-ढाले सूती कपड़ों में थे। एक ऊँची पीठवाली कुर्सी पर बैठे थे और वीणा उनके हाथ में थी। वे मुस्कराये, "मेरे कमरे से बाहर ही अश्वदत्त के बैठने के लिए चौकी बना दी जाय, ताकि हर रात वीणा की झंकार सुन कर यह सो जाया करे," उन्होंने कहा। "संगीत बुरे सपनों को भगा देगा।"





उस दिन से अश्वदत्त सम्राट के कक्ष के बाहर ही सोने लगा। अब अश्वदत्त ने उन लोगों को देखा जो राजा के अंतरंग थे। वह कला और विद्वत्ता की दुनिया थी। महान सम्राट योद्धा होने के साथ-साथ, कवि, संगीतज्ञ और विद्वान थे। उनके मित्र पंडित हरिसेन उनके गुरु के समान थे। विद्वान पंडित हरिसेन का कहना था कि सम्राट कवियों और संगीतज्ञों के शिरोमणि हैं।

तब सम्राट नगरों की ओर बढ़ने लगे। इनकी अपनी भी एक नागरिक सभ्यता थी। पूर्वी तट की सड़क से ये लोग दक्षिण की ओर बढ़ने लगे। अश्वदत्त ने पहली बार खुला हुआ समुद्र देखा।

राक्षस के अलावा एक और शानदार घोड़ा उनके साथ आया था। लेकिन इसकी सवारी कोई नहीं करता था। यह घोड़ा अश्वमेध वाला घोड़ा था। जिन-जिन राज्यों से यह घोड़ा गुजरा सबने समुद्रगुप्त की प्रभुता स्वीकार की और उन्हें चक्रवर्ती घोषित किया। पाटलिपुत्र लौटने पर इस घोड़े का बलिदान होने को था। अश्वदत्त से इसकी भी दोस्ती हो गयी और कभी-कभी वह इसे भी कुछ खिलाता-पिलाता रहता।

कृष्णा और गोदावरी के बीच का वेंगी प्रदेश भी उन्होंने पार कर लिया। विद्या का प्राचीन केंद्र और राजधानी कांची में एक विशाल दरबार का आयोजन हुआ। दक्षिण के सभी राजाओं ने एकत्र होकर सम्राट की अभ्यर्थना की। लंका के राजा मेघवर्ण ने भी रत्नों से भरा हुआ एक संदूक उपहार में भेजा।

अंत में सेना वापस लौटती हुई पश्चिम-दक्षिण और महाराष्ट्र से होकर गुजरी। घर से चले तीन वर्ष हो चुके थे। युद्ध हो या शिकार, सम्राट सबमें आगे रहते। रात को धार्मिक बातें होतीं, कविता पाठ और संगीत होता, विशेष दरबार लगते, जहाँ दूसरे राजाओं को सम्मानित किया जाता।

अश्वदत्त अब बिल्कुल बदल गया था। पहले से लंबा और तगड़ा हो गया था। शरारतें भूल गया था। साहसिक कारनामों से भरा-पूरा वह घर लौट रहा था।

पाटलिपुत्र ब्राह्मणों और दूसरे लोगों से भर गया था। वे सब अश्वमेध यज्ञ देखने आये थे। धर्मराज युधिष्ठिर के समय से यह प्रथा चली आ रही थी।

अभियान के दौरान अश्वदत्त यज्ञ के घोड़े को बहुत चाहने लगा था। आखिरी रात वह छिपकर अंतिम विदा लेने उसके पास पहुँचा। दूसरे दिन फूलमालाओं से सजा हुआ घोड़ा बेदी पर बलि चढ़ा दिया गया। यादगार के रूप में स्वर्ण-मुद्राएँ ब्राह्मणों को बाँटी गयीं। एक मुद्रा उसमें से अश्वदत्त को भी मिली। कुछ मुद्राएँ उसने अपने माता-पिता के लिए पहले से ही सहेज कर रखी थीं। उसी में वह मुद्रा भी उसने डाल दी।

उस रात अश्वदत्त और उसके माता-पिता ने सिक्कों को ध्यान से देखा। अश्वदत्त ने उन पर खुदे हुए अक्षरों के बारे में बताया। "पहले के शासकों ने ऐसे सुंदर सिक्के नहीं चलाये। इन्हें दीनार कहते हैं। जो दीनार मैं आज लाया हूँ उसे देखिए। कल जिस घोड़े का बलिदान हुआ था, उसकी छवि इस पर खुदी हुई है।

"देखो," माँ ने सिक्के को पलटते हुए कहा, "इस ओर एक स्त्री की छवि बनी हुई है।"

"वह महारानी दत्तदेवी हैं," अश्वदत्त ने बताया, "सम्राट की पत्नी। यह जो शब्द खुदा हुआ है 'अश्वमेध' है। हमारे सम्राट् महारानी का कितना सम्मान करते हैं! अपने साथ उनका नाम भी जोड़ लिया है।

"यह सिक्का देखो, माँ," अश्वदत्त बोला। "हमारे सम्राट वीणा लेकर बैठे हैं। एक ढीली-ढाली धोती पहन रखी है, लेकिन इनकी पोशाक मोतियों से जड़ी होती है, कानों में हीरे होते हैं। एक बड़ा कीमती जेवर इनके बाजू पर होता है। सिक्के के दूसरी ओर लक्ष्मी खुदी हुई हैं।"

एक बार लंका के राजा मेघवर्ण के दूत अनेक कीमती उपहार लेकर पाटलिपुत्र सम्राट के पास आये। लंका के बौद्ध धर्म के अनुयायियों ने शिकायत की थी कि जब वे यहाँ आते हैं तो महाराज अशोक के बनवाये हुए बुद्ध गया के विहार में उनको रहने की जगह नहीं मिलती। लंका के राजा ने अलग-अलग स्थानों पर विहार बनवाने की अनुमति चाही थी। अनुमति दे दी गयी। स्थान भी चुन लिया गया। एक विशाल मठ भी तैयार हो गया। मठ तिमंजिला था। उसमें छः विशाल कक्ष थे। इनमें तीन मीनारें खड़ी थीं, तीस-चालीस फुट ऊँची दीवार से यह मठ घिरा हुआ था। अंदर सोने और चाँदी से बनी हुई भगवान बुद्ध की विशाल प्रतिमा थी। बीच-बीच में लंका के प्रसिद्ध रत्न जड़े हुए थे।

अश्वदत्त की माँ को यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि स्वयं सम्राट महारानी और युवराज वैष्णव हैं। फिर भी बौद्धों के लिए इतना कुछ किया जा रहा है। तब अश्वदत्त ने अपने माता-पिता को बताया कि बौद्ध विद्वान होते हुए भी पंडित वसुबंधु का सम्राट के दरबार में कितना सम्मान है।

"लेकिन अपने सम्राट के विद्वान दोस्त तो पंडित हरिसेन हैं और वह ब्राह्मण हैं," पिता वेणु ने कहा।

"हरिसेन संस्कृत के बहुत बड़े विद्वान और कवि हैं, दरबार में और पाटलिपुत्र में उन्हें सब लोग जानते हैं," अश्वदत्त ने कहा। "लेकिन पंडित वसुबंधु को दूर-दूर के लोग जानते हैं। उन्हें पुरुषपुर, लंका, यहाँ तक कि चीन से भी निमंत्रण आता है। हमारे सम्राट हमेशा से दूसरों के धर्म का सम्मान करते हैं। धर्मोपदेशकों का भी वह सम्मान करते हैं और उन्हें सुविधाएँ देते हैं।

अश्वदत्त पर सम्राट की कृपा दृष्टि थी। वह यात्राओं में उनके साथ जाता था। अपने पिता के जीवनकाल में अश्वदत्त ने सम्राट के साथ प्रयाग तक की यात्रा

कर ली।

सम्राट समुद्रगुप्त बूढ़े हो चले थे। उनकी सफलता और विजय की कहानी अभी हाल ही में पंडित हरिसेन ने लिख कर समाप्त की थी। सम्राट की प्रशंसा में लिखा यह एक काव्य-ग्रंथ था। भाषा संस्कृत थी। चमकाये हुए पत्थर के एक स्तंभ पर इसकी खुदाई भी हो चुकी थी। यह स्तंभ लगभग पाँच शताब्दियों मे कौशाम्बी में खड़ा था।

अश्वदत्त ने अपने माता-पिता को उसका अर्थ समझाया——सम्राट कितने कुशल योद्धा, कवि और संगीतज्ञ हैं। पूर्व, उत्तर और दक्षिण के उनके अभियानों का वर्णन भी है।



"उस दिन से लेकर जब तुम हम सबको रोता छोड़ कर सम्राट के साथ पहली बार चले गये थे, आज तक तुमने कितना सीखा, कितनी यात्राएँ कीं ?" अश्वदत्त की मां ने कहा। "सब कुछ राक्षस की बदौलत। उसका ऋण है तुम पर। अगर तुम्हारे बग़ैर वह चला गया होता तो तुम कैसे जाते ?"

विंध्य के घने जंगलों में तीन लंबी युवतियाँ एक चिता के सामने बैठी हुई थीं। वे दुखी, मलिन और पीली-सी दिखायी पड़ रही थीं।

जंगल में रहनेवाली साँवली स्त्रियों से ये स्त्रियाँ भिन्न लगती थीं। ख़ासतौर पर सबसे छोटी स्त्री तो किसी राजकुल की जान पड़ती थी। वह अपने पैरों में जकड़ी बेड़ियों की ओर देख रही थी। वह राजकुमारी राज्यश्री थी, थानेश्वर के राजा की बेटी और कन्नौज के शासक की पत्नी। अभी-अभी विधवा हो गयी थी। अभी छः महीने पहले तक उसके लिए खुशियाँ बिखरी पड़ी थीं। कन्नौज के पश्चिम और दिल्ली के उत्तर के एक छोटे राज्य थानेश्वर को उसके पिता ने एक महत्वपूर्ण राज्य बना दिया था। यह राज्य जंगली हूणों को भगाने में सहायक हुआ था। ये हूण महान स्कंदगुप्त के समय से ही देश में लूट-खसोट मचाते रहते थे।

राजा के दो बेटे थे––राज्यवर्द्धन और हर्ष। अपनी दुलारी बेटी का ब्याह जो अपने भाइयों की ही तरह उच्च शिक्षिता थी, कन्नौज के राजा से कर दिया था। कन्नौज उन दिनों आर्यावर्त्त के बड़े शहरों में गिना जाता था।

तभी उत्तर की ओर से हूणों का हमला हुआ। राजकुमार राज्यवर्द्धन एक सेना लेकर पहुँचा। उसके साथ छोटा भाई हर्ष भी था। हर्ष की आयु तब पंद्रह वर्ष की थी। छोटा होने के कारण हर्ष को सेना की एक टुकड़ी के साथ हिमालय की तराई में छोड़ कर, राजकुमार राज्य आगे बढ़ा। वह क्षेत्र जंगली जानवरों से भरा हुआ था। राजकुमार हर्ष शिकार का आनंद लेने लगा।

समाचार मिला, राजा मृत्युशय्या पर हैं। हर्ष तुरंत पिता से मिलने चल पड़ा, ताकि उनके अंतिम शब्द वह सुन सके। पिता के अंतिम शब्द थे––जनता की रक्षा करना, सैनिक धर्म निभाना और शत्रुओं का नाश करना।

भागते हुए हूणों के बाण से घायल राजकुमार राज्य को यह समाचार मिला। एक के बाद दूसरी विपत्तियाँ भी आयीं। मौक़े का लाभ उठाकर पश्चिमी मालवा के राजा ने कन्नौज पर हमला करके राजकुमार के बहनोई को मार डाला और

उनकी बहन राज्यश्री को कारावास में डाल दिया।

राजकुमार राज्य अपनी बहन को छुड़ाने और मालवा को मज़ा चखाने फ़ौरन चल पड़ा। मालवा के राजा को उसने हरा दिया। लेकिन उसकी बहन किसी की सहायता से भाग निकली थी। फिर एक बौद्ध भिक्षु के सहारे विंध्य के जंगल में पहुँच गयी। जंगल में बौद्धों का एक मठ था।

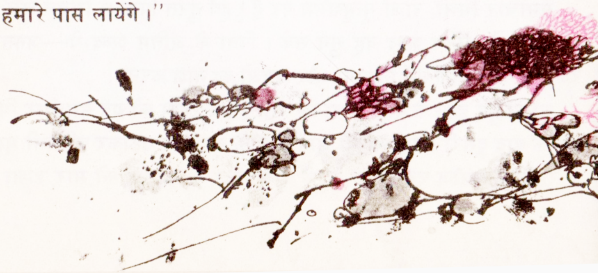
लेकिन युवा राजकुमारों का कष्ट अभी दूर नहीं हुआ था। गौड़ (पश्चिमी बंगाल) के राजा शशांक ने दोस्ती के बहाने विजयी कुमार राज्य को मंत्रणा के लिए बुला भेजा। वास्तव में शशांक मालवा का मित्र था। विश्वासघात से बेख़बर कुमार राज्य अकेले ही मंत्रणा के लिए पहुँचा, जहाँ निर्दयता से उसकी हत्या कर दी गयी।

इसके बाद सारा दायित्व कुमार हर्ष पर आ पड़ा। भाई का बदला लेने और बहन को छुड़ाने वह तुरंत चल पड़ा। गौड़ के विरुद्ध संघर्ष रोक दिया गया।

राजकुमारी तब तक निराश हो चुकी थी। शरीर और मन दोनों से ही अस्वस्थ थी। सारे दिन वह अपनी चिता के लिए लकड़ियाँ इकट्ठी करती।

"इन लोगों के बीच मेरी ज़िंदगी क्या होगी?" वह साथ की स्त्रियों से कह रही थी, "क्या हमें जंगली मुखियाओं की पत्नियाँ बनना पड़ेगा। मैं क्या क़बीले की सरदारनी बनूँगी? मैं, जो थानेश्वर और कन्नौज के दरबार का अलंकार थी? पिता नहीं रहे, बड़ा भाई नहीं रहा, पति चल बसे। मेरी रक्षा कौन करेगा और मैं किसलिए जीवित रहूँ?"

"आपका प्यारा भाई अभी है। जंगल के मुखिया लोगों ने वायदा किया है कि उन्हें हमारे पास लायेंगे।"





"अभी उसकी उम्र ही क्या है ? कितनी ज़िम्मेदारियां हैं उसके कंधों पर ।"

दिन गुज़रते जा रहे थे, कहीं से कोई सहायता नहीं। अंत में निराश होकर राजकुमारी ने कहा, "कल मैं प्राण त्याग दूँगी। रात-भर हम प्रार्थना करते रहेंगे। उसके बाद मैं चिता में प्रवेश करूँगी। अग्नि देवता मेरे सारे दुखों का अंत कर देंगे।"

लेकिन भोर होते ही राजकुमारी के भाग्य ने पलटा खाया। रात-दिन की यात्रा तय करके हर्ष ठीक समय पर अपनी बहन के पास पहुँच गया। चिता तैयार हो चुकी थी। राजकुमारी ने उसमें प्रवेश किया। उसकी दासियों ने भी उसी के साथ जल मरने का फ़ैसला कर लिया था। जंगल की स्त्रियाँ चुप, उदास खड़ी थीं। हर्ष एक छलांग में चिता पर जा पहुँचा और आग की लपटों से अपनी बहन को खींच कर निकाल लाया।

"तुम आ गये, हर्ष !" भाई के गले लिपट कर राजकुमारी रो पड़ी। "लेकिन दुर्भाग्य हमें चारों ओर से घेर चुका है। हम क्या करेंगे ?"

हर्ष ने दृढ़, सधे हुए स्वर में उत्तर दिया, "सबसे पहले सूर्य को धन्यवाद देना चाहिए जिनकी पूजा बाबा किया करते थे। सूर्य देवता हमारे लिए नया दिन, नया जीवन लेकर आते हैं।"

हर्ष ने एक युवा पंडित की ओर देखा जो उसके साथ आया था। सूर्य की स्तुति में पंडित उच्च स्वर से मंत्रोच्चार करने लगा।

"लेकिन अभी तो तुम इतने छोटे हो भैया, तुम शासक बनना नहीं चाहते थे। तुम्हारी इच्छा विद्वान बनने की थी। इस निष्ठुर दुनिया का सामना कैसे करोगे ?"

पंडित ने कहा, "आपके भाई छोटे एक महीने में बिल्कुल बदल गये हैं। दो खाली सिंहासन इनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, और ये दोनों पर ही बैठेंगे।"

इस प्रकार सब लोग वापस चले गये। हर्ष ने थानेश्वर और कन्नौज का सिंहासन सँभाल लिया। कम उम्र के कारण कुछ अड़चनें आयीं, लेकिन सेनापति सिंहनद ने वे अड़चनें दूर कर दीं।

इस प्रकार 606 ईस्वी में हर्ष युग आरंभ हुआ।

पैंतीस वर्ष बाद राजा हर्ष, उनकी बहन और पंडित फिर से कन्नौज के शाही महल में थे। कन्नौज की प्रतिरक्षा का पूरा प्रबंध था। पश्चिम की सीमा गंगा नदा द्वारा सुरक्षित थी। बाकी तीनों दिशाओं में गहरी खाइयाँ और ऊँची मीनारें बनी हुई थीं। दिन में सड़कों पर छिड़काव होता था। रात में दिये जलाये जाते थे। सुंदर मंदिर थे, बौद्ध विहार थे, मकान ईंटों और लकड़ियों के बने थे। उन पर चित्रकारी और खुदाई की हुई थी।

युवा राजकुमार अब आर्यावर्त्त के स्वामी थे। उन्होंने शांति और व्यवस्था स्थापित की थी। युवती राजकुमारी अब प्रौढ़ हो चुकी थी। भाई की बगल में बैठ कर वह विद्वानों के प्रवचन सुनती थी। उनके विचार-विमर्श में भाग लेती थी। युवक पंडित अब भारी-भरकम शरीर लिए समारोहों की व्यवस्था में लगा रहता था। ये समारोह और पर्व अलग-अलग तरीके के होते थे। राजा को हमेशा से धर्म पर विश्वास था। पूजा की विभिन्न पद्धतियाँ उन्हें अच्छी लगती थीं। बढ़ती हुई उम्र के साथ भाई और बहन, दोनों की रुचि बौद्ध धर्म की ओर बढ़ने लगी थी।

हर्ष-रचित एक नाटक खेला जानेवाला था, 'नागानंद'। यह नाटक एक प्राचीन बौद्ध-कथा पर आधारित था। नाटक की व्यवस्था करने में पंडित व्यस्त हो गये थे। एक प्रदर्शन देखने के बाद पंडित का बेटा पुंडरीक इसके विषय में अपने मित्रों, वसुमूर्त्ति और आयाम से बातचीत करने लगा। पुंडरीक ने कहा, "हमारे सम्राट, अशोक, समुद्रगुप्त, चंद्रगुप्त विक्रमादित्य से कम नहीं हैं। अपने नाटक 'नागानंद' में उन्होंने नायक राजा जीमुतवाहन का चरित्र-चित्रण जिस प्रकार किया है, मेरे पिता जी कहते हैं यह स्वयं उन्हीं का अपना चरित्र है—एक राजा जो शांति-प्रिय है, लोक-कल्याण के लिए जो अपना बलिदान कर सकता है।"

"लेकिन पुंडु," आयाम ने कहा, "तुम कहते हो कि हमारे हर्ष अशोक की तरह हैं, जिन्होंने शांति के लिए युद्ध बंद कर दिया था और योद्धा राजा समुद्रगुप्त

[illegible] उन्होंने उत्तरापथ, बल्कि दक्षिणापथ पर भी, विजय पायी थी।

और राजा की सेना में पहले 5 हज़ार हाथी, 20 हज़ार घुड़सवार और 50 हज़ार पैदल सेना थी। अब 60 हज़ार हाथी और एक लाख अश्वसेना है।" यह बात वसुमूर्ति ने कही।

"युद्ध तो बहुत हुए," पुंडु बोला, "शांति स्थापित करने के लिए वे ज़रूरी थे। चारों ओर गड़बड़ी जो मची हुई थी उसे ख़त्म करना राजा के लिए ज़रूरी था।



हूणों ने गुप्तवंश का सफ़ाया कर दिया था। आर्यावर्त्त में कोई भी सशक्त शासक नहीं था।''

''वर्षों तक लगातार सिपाहियों ने अपने हथियार नहीं रखे, तब जाकर सारे राज्य एक छत्र के नीचे आ सके। अब गंगा के पूरे मैदान में, नेपाल और हिमालय मे लेकर नर्मदा तक, राजा हर्ष राज्य करते हैं। सुदूर देशों के राजा इनकी आज्ञा मानते हैं। पूर्व में कामरूप के राजा हर्ष के गहरे दोस्त हैं, पश्चिम में वल्लिभी के



राजा उनके दामाद है।"

प्रभाकर पंडित ने लड़कों की बात सुनी। उन्होंने कहा, "हमारे सम्राट हर्ष प्रजा के कल्याण के लिए हमेशा प्रयत्न करते रहते हैं। देश के कोने-कोने से राजा के पास संदेश आते हैं। राजा अपने सभासदों के साथ बैठते हैं, तब वे संदेश पढ़े जाते हैं, और उनके लिखित उत्तर दिये जाते हैं। संदेश भेजने का एक अलग विभाग है। राजा के संदेश उनकी ऊँटनी-सवार लेकर जाते हैं।"

"अपने अधिकारियों पर निगाह रखने के लिए राजा स्वयं ही सबकी टोह लेते रहते हैं। वह जानते हैं उनके अधिकारी जनता के साथ कैसा व्यवहार करते हैं। टहनियों और सरकंडों से बने हुए अपने चलते-फिरते महल में राजा अपनी वही दिनचर्या क़ायम रखते हैं जो कन्नौज के शानदार शाही महल में होता है, वरना उनके अनगिनत काम कभी पूरे नहीं हो सकते।"

"दिन का एक हिस्सा दान के लिए निश्चित है। राजा गरीबों, धार्मिक लोगों, और शिक्षा की संस्थाओं आदि को दान देते हैं। यह सब बड़े तरीक़े से होता है। महल की रसोई से अनेक बौद्ध भिक्षुओं और पुजारियों को भोजन मिलता है।"

आयाम बीच में बोल पड़ा, "राजा बौद्ध धर्म में रुचि क्यों लेते हैं ? उनके पुरखे तो बौद्ध धर्म को नहीं मानते थे।"

"हमारे राजा के पुरखे कई देवताओं की पूजा करते थे," पंडित ने कहा। "अन्य देवताओं के ऊपर शिव की पूजा भी इनके पुरखों ने की थी। राजा के पिता प्रभाकरवर्द्धन आदित्य की पूजा करते थे। आदित्य, अर्थात सूर्य। रोज़ एक टोकरी में लाल कमल के फूल और एक बर्तन में लाल मणि रखकर सूर्य को चढ़ाया जाता था। सम्राट ने शिव के मंदिर बनवाये हैं। सूर्य और बुद्ध के मंदिर भी समान रूप से बने हैं। नालंदा के प्रसिद्ध बौद्ध विश्वविद्यालय के वह संरक्षक हैं। हर पाँचवें वर्ष एक बड़ी सभा होती है जिसमें दूर-दूर देशों के लोग आते हैं। विचार-विमर्श होता है, विचारों का आदान-प्रदान होता है।"

"ढेरों दान भी होता है न ?" वसुमूर्ति ने पूछा।

"राजा के निजी ख़जाने में पाँच वर्षों में जितना धन जमा होता है सब बौद्ध

भिक्षुओं, ब्राह्मण-पंडितों और गरीबों को दे दिया जाता है," पंडित ने कहा। "राजा अपने गहने-कपड़े सब कुछ उतार कर दे देते हैं। बहन से कपड़ा माँग कर खुद पहनते हैं। उनके कपड़ों और गहनों को बेचने से जो धन आता है, उसे भिक्षु लोग धर्मग्रंथों की प्रतियाँ तैयार करवाने में खर्च करते हैं।"

"राजा और क्या करते हैं?" वसुमूर्ति ने पूछा।

"दिन का कुछ समय साहित्यिक चर्चाओं में बीतता है, कविता-प्रतियोगिताएँ होती हैं जहाँ कवि अपनी रचनाएँ स्वयं पढ़ते हैं। राजा हर्ष ने नाटक और एक व्याकरण ग्रंथ स्वयं लिखा है। राजा के घनिष्ठ मित्र बाणभट्ट एक प्रसिद्ध लेखक हैं। कहने का मतलब यह कि राजा चाहे दरबार में हों चाहे शिविर में, या यात्रा पर खाली कभी नहीं बैठते।" इतना कहने के बाद पंडित चला गया।

"बाणभट्ट की संस्कृत बड़ी कठिन है," आयाम बोला। "पिताजी ने मुझे बाणभट्ट का एक उपन्यास दिया है, भोज-पत्र पर लिखा हुआ। बाणभट्ट अब राजा हर्ष पर एक पुस्तक लिख रहे हैं—हर्षचरित।"

"हमारे राजा की भाषा सुंदर और आसान है," वसुमूर्ति बोला। 'नागानंद' मुझे बहुत अच्छा लगा। बोधिसत्व, राजा जीमुतवाहन, उसमें विष्णु के वाहन गरुड़ के सामने नागों के बदले अपने आप को समर्पित करते हैं। इस प्रकार नागों की पूरी जाति समाप्त होने से बच जाती है। गरुड़ पूरी सर्पजाति के दुश्मन होते हैं। इसके अलावा हमारे सम्राट की लिखाई भी बहुत अच्छी है।"

"नालंदा विश्वविद्यालय जाने को मिले तो बात ही क्या!" पुंडरीक ने कहा। "उसके विशाल कक्ष, उसकी मीनारें पहाड़ की तरह खड़ी हैं। पुस्तकालय की तीन इमारतें हैं जहाँ हज़ारों की संख्या में पाण्डुलिपियाँ रखी हुई हैं।"

नालंदा तो मैं भी जाना चाहता हूँ," वसुमूर्ति बोला। "मुझे वह बड़ी जल-घड़ी देखनी है जिससे सारे उत्तरापथ का समय निर्धारित होता है।"

"पता नहीं हम वहाँ जा भी पायेंगे या नहीं," पुंडरीक बोला। "नालंदा जाने से पहले विद्यार्थी को बहुत कुछ पढ़ना-लिखना पड़ता है। द्वारपाल इतने विद्वान होते हैं कि प्रवेश करनेवालों से प्रश्न पूछते हैं। दस में से दो या तीन विद्यार्थियों

को दाखिला मिल पाता है।"

"लेकिन वहाँ पाँच हज़ार विद्यार्थी रहते हैं," वसुमूर्ति ने कहा।

"वे भारत के विभिन्न कोनों और दूसरे देशों से आये हुए विद्यार्थी हैं। सुदूर लंका और उससे भी दूर यवद्वीप और सुवर्णद्वीप (जावा और सुमात्रा) के विद्यार्थी भी हैं।"

"एक बार प्रवेश मिल जाय तो भी आखिरी परीक्षा पास करनी पड़ती है," वसुमूर्ति आयाम बोला। "जो विद्यार्थी उसमें सफल होते हैं, उन्हें फूल-मालाएँ पहना कर, हाथी पर बिठाकर नगर में घुमाया जाता है, और जो असफल होते हैं उनका मुँह काला करके, गधे पर उल्टा बिठा कर, उन्हें भी शहर में घुमाया जाता है।"

"तब तो भाई पुंडु," वसुमूर्ति डरते हुए बोला, "नालंदा जाने का इरादा छोड़ देना ही ठीक रहेगा।"



कन्नौज की धर्मसभाएँ

प्रभाकर पंडित तेज़ी से आये और बोले, "आचार्य जी, ज़रा रुक जाइए।" लड़कों ने कहा, "हमें नालंदा के बारे में बताइए।"

"एक विदेशी विद्यार्थी पहुँचने ही वाले हैं। मुझे उनके स्वागत की तैयारी करनी है," पंडित जी ने कहा। "वह नालंदा गये थे। दूसरी यात्राएँ भी उन्होंने की हैं। एक विद्वान की हैसियत से इनकी प्रसिद्धी चारों ओर फैल गयी है। शीलभद्र उनसे मिलने के लिए भेजे गये थे। सौ भिक्षुओं के जुलूस ने, फूलमालाओं आदि के साथ स्वागत किया था। घंटे-घड़ियाल के साथ ह्वेनच्वांग को नालंदा में रहने के लिए बुलाया गया था। जिस वस्तु की आवश्यकता उन्हें थी, उसका प्रबंध मुफ्त हुआ था।"

"उन्होंने नालंदा छोड़ क्यों दिया?" पुंडरीक ने पूछा।

"उत्तर के राजा लोग उन्हें

अपने दरबारों में रखना चाहते हैं," पिता ने उत्तर दिया। "नालंदा आने से पहले कश्मीर के शासक ने उनका बड़ा सम्मान किया था। उनके रास्तों पर फूल बिछाये गये थे। सुगंधियों का छिड़काव हुआ था। वहाँ वह एक विहार में दो साल रह कर अपनी संस्कृति का विकास करते रहे। राजा ने उनके लिए बीस लिपिकों का प्रबंध किया था ताकि महत्वपूर्ण बौद्ध धर्म-ग्रंथों की प्रतियाँ तैयार करा के उन्हें वह अपने साथ चीन ले जा सकें। वह एक विहार से दूसरे विहार गये, फिर नालंदा में आकर रहे। कामरूप के सम्राट भास्कर धार्मिक और दार्शनिक विषयों पर उनका भाषण सुनना चाहते थे। उन्होंने बड़ी नम्रता से मना कर दिया और कहा, 'नालंदा के अपने अध्ययन में मैं बाधा नहीं डालना चाहता।' भास्कर बहुत नाराज हुए। उन्होंने नालंदा को जला देने की धमकी दी। तब से ह्वेनत्सांग उनके दरबार में रहे, लेकिन जब हर्ष को पता चला कि चीनी विद्वान (विद्यार्थी) भास्कर के दरबार में जबर्दस्ती रखा गया है तो उन्होंने उसे वापस बुलाने का संदेश भेजा। भास्कर ने उत्तर दिया, 'उसका सिर सेवा में भेजा जा सकता है, मेहमान नहीं।'

'हम सिर भेजने के लिए बाध्य कर देंगे,' एक और छोटा-सा संदेश भेज दिया गया।

"भास्कर ने फिर से सोचा और चीनी विद्वान को साथ लेकर उपस्थित हुआ। हमारे राजा ने बड़े सम्मान से विद्वान का स्वागत किया और उनकी पुस्तकों में से एक की व्याख्या करने को कहा। व्याख्या सुन कर सम्राट इतने प्रसन्न हुए कि तत्काल उन्होंने बड़े पैमाने पर धार्मिक वाद-विवाद की व्यवस्था की। इसमें सभी विद्वान भाग ले सकते थे। राजा ने उस विद्वान को 'कानून के विद्वान' की उपाधि दी। इस वाद-विवाद से राजा यह देखना चाहते थे कि कानून के इस पंडित को कोई हरा सकता है या नहीं।"

"इस महासभा की तैयारियाँ पहले से ही होने लगीं। सारे मेहमानों के रहने और खाने की व्यवस्था की गयी थी। कई हजार बौद्ध भिक्षु आये। एक हजार तो सिर्फ़ नालंदा के ही थे। अट्ठारह राजा, जो सम्राट हर्ष के सामंत हैं और जो अपने कर्मचारियों के साथ यहाँ उपस्थित हैं, सम्राट के स्वागत की प्रतीक्षा कर रहे हैं।



कामरूप के भास्कर, वल्लभी के ध्रुवसेन और दामाद तो राजा के ही साथ हैं।

"शहर के बाहर एक बड़ा-सा घेरा बनाया जायेगा। फाटक पर एक ऊँची मीनार बनेगी। विदेशी विद्वान वहीं से सभा का संचालन करेंगे। अपना विचार सामने रखकर सबको चुनौती देंगे कि कोई उनकी बात को ग़लत साबित कर दे।"

"इसके बाद पूरे महीने के क्रिया-कलाप थे। जब जुलूस अपनी मंजिल तक पहुँच गया तब लड़कों को एक शानदार नज़ारा दिखायी पड़ा। राजा हर्ष और उनके अतिथि दक्षिणी सिरे से आगे बढ़े और भास्कर उत्तरी सिरे से। रंग-बिरंगे कपड़ों और चमकदार हौदों से सजे हुए लगभग आठ सौ हाथी थे। तड़क-भड़क के साथ सजायी गयी कई नावें थीं, अधिकारी वर्ग प्रतीक्षा में खड़े थे।

जब उस विशाल धर्म सभा का आरंभ हुआ। पुंडरीक अपने मित्रों के साथ किसी तरह घेरे में प्रवेश कर पाया। 'कानून का पंडित', यह सफ़ेद कपड़े पर लाल रंग में लिख दिया गया था। पंडित का बेटा संस्कृत जानता था इसलिए इस कपड़े को फाटक की ऊँचाई पर लगाने का दायित्व इसे सौंपा गया था।

ऊँची मीनार के ऊपर बुद्ध की एक स्वर्ण प्रतिमा रखी हुई थी। मीनार के नीचे खास-खास लोगों के बैठने की व्यवस्था थी। 'कानून के पंडित' को भी वहीं बैठाया गया था।

चार दिनों तक वाद-विवाद चलता रहा। विद्वान यात्री इतनी सादगी, स्पष्टता और प्रभावपूर्ण ढंग से बोले, महायान बौद्ध धर्म के पक्ष में उन्होंने ऐसे तर्क रखे, कि सम्राट और उनकी बहन बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया।

लेकिन वहाँ ईर्ष्या करनेवाले भी थे। विरोधी वर्ग राजा और उस विद्वान की आलोचना करने लगे। शिकायत करनेवालों की खुसफुस बढ़ती गयी। जो दलीलों का जबाव नहीं दे पाया वह आलोचक बन गया। यहाँ तक कि लड़के भी आपस में तर्क-वितर्क करने लगे।

"उस विदेशी विद्वान का विरोध कोई नहीं कर सकता क्योंकि लोग डरते हैं कि अगर ऐसा किया तो राजा सजा देंगे," वसुमूर्ति ने कहा।

एक साल बाद, ह्वेनत्सांग घर लौटने के लिए तैयार था। तीनों लड़के विदा देने और आशिर्वाद लेने के लिए आ पहुँचे।

"हमारे देश में आप नहीं रुकेंगे, श्रीमान् ?" पुंडरीक ने पूछा। "मेरे पिता जी कह रहे थे कि सम्राट और कामरूप के राजा भास्कर ने भी आपसे अनुरोध किया है।"

"मेरे प्रति सब लोग बड़े दयालु रहे हैं, लेकिन जिस खजाने की तलाश में मैं आया था, उसे लेकर मुझे घर जरूर जाना चाहिए।"



"जब आप जाने लगेंगे, सम्राट आपको ढेरों उपहार देंगे," आयाम बोला।

"एक यात्री को व्यक्तिगत उपहारों से मतलब नहीं रहता," भिक्षु ने उत्तर दिया। "फिर भी मैं अपने मठ और अपने लोगों के लिए बहुत बड़ा ख़ज़ाना ले जा रहा हूँ––संस्कृत की 650 पांडुलिपियाँ जिनमें बुद्ध की जन्मभूमि के ज्ञान का भंडार भरा है। इसके अलावा उनके बहुमूल्य स्मृतिचिह्न, उनकी मूर्तियाँ आदि ले जा रहा हूँ।"

"नहीं, जैसे आया था, वैसे ही अकेला चला जाऊँगा," यात्री बोला। "लेकिन तुम्हारे शासकों ने उत्तर के राजाओं के नाम परिचय पत्र दिये हैं। सफ़ेद कपड़ों पर लिखे उन पत्रों पर लाल मोम पर सम्राट की मुहर लगी हुई है।"

"आप दुबारा यहाँ आएँगे?" वसुमूर्ति ने पूछा।

"तुम्हे देखने फिर आऊँगा। चौदह वर्षों से मैं बाहर रहा हूँ," भिक्षु बोला। "जीवन का बाकी समय मै उन पांडुलिपियों के अनुवाद और व्याख्या मे लगा देना चाहता हूँ जिन्हे ले जा रहा हूँ। लेकिन बुद्ध के देशवासियों का स्नेह और उनकी मित्रता मुझे हमेशा याद रहेगी।"

तरंग प्रिंटर्स, एफ–40, साईट–सी, सूरजपुर इंडस्ट्रीयल एरिया, ग्रेटर नोयडा (यू.पी.)

₹ 19.00 ISBN 978-81-237-3399-9

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

